Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

080150

080150

७५
नये पैसे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िए

…त्तखें ५
—सुरेशसिंह

…हिमपात और तुषारवर्षा १०
—दीनानाथ भार्गव

…म्बाकू की कहानी १४
—अनिलचन्द्र

…ारापुंज और नीहारिकाएँ १८
—जगदीशचन्द गोविल

…ारहीनियस २४
—सत्यकुमार

…ये पुराने, पुराने नये होते हैं २७
—कुमारी सरला

… अनजाने बिखरे तत्त्व ३२
—दिनेशकुमार गौतम

…काम बड़े, दर्शन छोटे ३५
—ओमशंकर बाजपेयी

…रीर की इकाई—कोशिका ४२
—कौशलेन्द्रमोहन तिवारी

…सिन्कोना ४८
—जगदीशचन्द्र श्रीवास्तव

…न्द्रमा पर मानव के चरण ५१
—भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

स्थायी स्तम्भ

विचित्र संसार ३९
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ४७
विज्ञान-क्लब ५७
…इनाम लो ६१
आपके प्रश्न ६२
तुम्हारी कलम से ६४

अपनी बात

इस अंक के साथ **विज्ञान-लोक** अपना तृतीय वर्ष पूर्ण कर रहा है। इन तीन वर्षों में हमें अपने लेखकों और पाठकों से जो सहयोग मिला है उसके लिए हम आभारी हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में और भी अधिक सहयोग मिलता रहेगा।

पिछले दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय में एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक गोष्ठी का आयोजन किया गया था। उक्त गोष्ठी में चर्चाओं और विचार-विमर्श का वातावरण स्वस्थ, विचारोत्तेजक और नवीन दिशाओं का सूचक रहा। उसमें अनेक उपयोगी तथ्य सामने आये। उल्लेखनीय एक यह भी था कि विविध वैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग जनसाधारण के लिए अवश्य किया जाना चाहिए अन्यथा केवल प्रयोगों तक ही सीमित रहनेवाले अनुसंधान प्राय: व्यर्थ सिद्ध होते हैं।

उसी गोष्ठी में एक सुझाव यह भी था कि कम से कम इस राष्ट्रीय संकट के समय तो हम बातें कम और काम अधिक करें। निस्सन्देह यह सुझाव अत्यन्त उपयोगी और समयोचित है। जब तक हम पूरी लगन और तत्परता से काम नहीं करेंगे, हम किसी भी मोर्चे पर जीत न सकेंगे; चाहे वह मोर्चा युद्ध का हो, गरीबी, बेकारी, या भुखमरी-उन्मूलन का हो अथवा अपने प्रगति-पथ का ही हो।

विज्ञान-लोक आशा करता है कि राष्ट्र का जन-जन इस सत्य को समझेगा और युद्ध-स्तर पर अपने-अपने कार्य में पूरी लगन से जुटा रहेगा।

वर्ष ३ **अंक १२**

विज्ञान लोक

मूल्य
प्रति : ७५ नये पैसे
…षिक : ९ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कां...

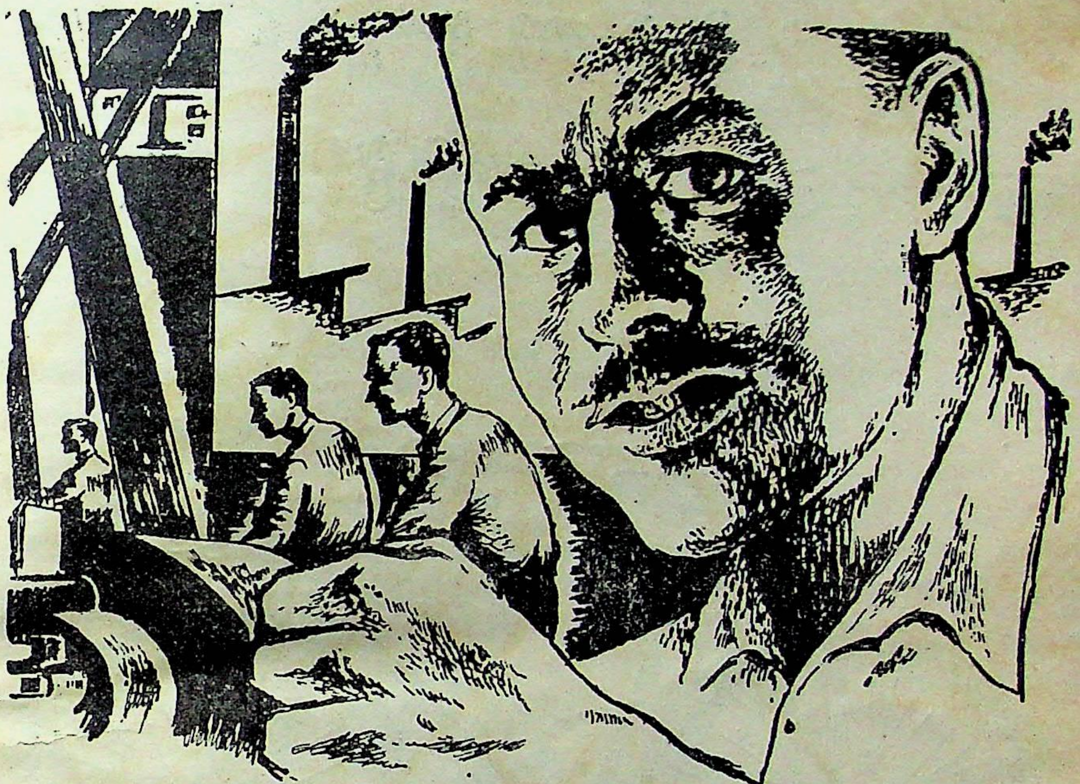

जीत के लिए जी-तोड़ मेहनत

विजय के लिए आपका काम भी बहुत जरूरी है। मातृभूमि की रक्षा के लिए हमारी सीमा पर लड़ रही सेनाओं को सुदृढ़ करने, राष्ट्र को अधिक साधन सम्पन्न बनाने और सभी मोर्चों पर प्रहार-शक्ति सबल करने के लिए प्रत्येक को उत्पादन बढ़ाने के वास्ते जी-तोड़ मेहनत करना आवश्यक है।

चाहे विशाल औद्योगिक–कारखाना हो या मशीन शॉप, चाहे फाउन्ड्री हो अथवा खराद, सभी प्रकार का काम करने वाले लोगों को उत्पादकता बढ़ाने और अधिक उत्पादन के लिए अधिकाधिक परिश्रम करने का समय आ पहुंचा है। हमें इस बात का पक्का इंतजाम करना है कि सैनिक मोर्चों तक और देश की अन्दरूनी जरूरतों के लिए आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई का प्रवाह निरन्तर और निर्विघ्न चलता रहे।

हर नागरिक एक सैनिक है

खूब उत्पादन बढ़ा कर रक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए

DA 62/50

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलकी - दौड़नेवाली नॉर्टन

सायकिलें आसानीसे चलती हैं !

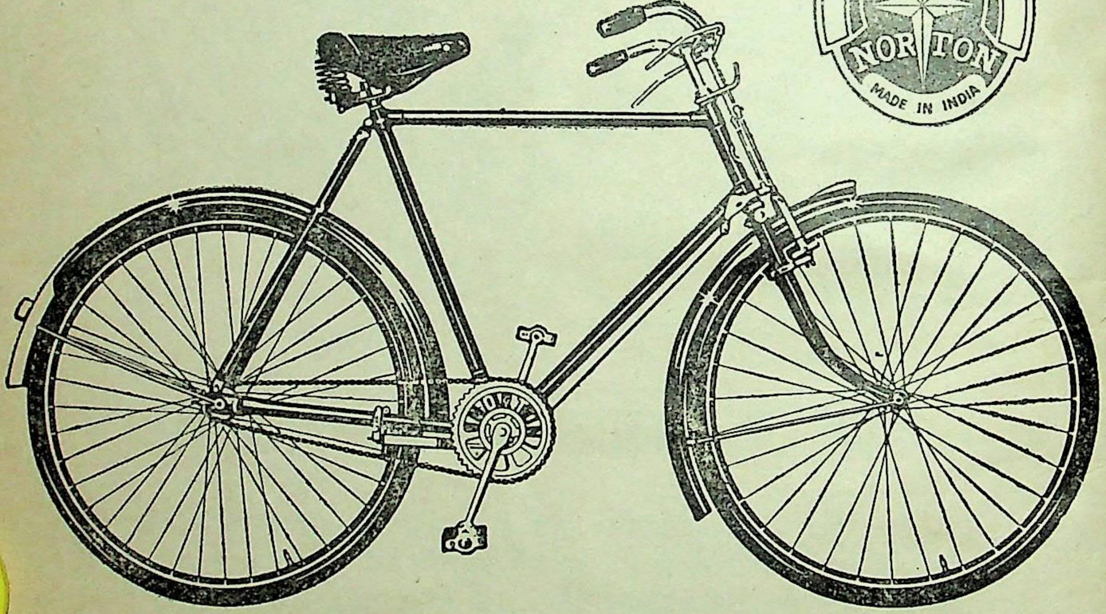

उत्तम कारीगारी द्वारा बने कल-पुर्जों से युक्त नॉर्टन सायकिलें जीवन भर आपका साथ देती हैं।

बिना प्रयास पैडलिंग के लिए नॉर्टन की सवारी कीजिए।

अन्य प्रसिद्ध ब्राण्ड

रॉयल स्टार, एडमिरल और हिन्द

ASP/HC-190 HIN

उत्तर प्रदेश एवम् बिहार के विक्रय-व्यवस्थापक

मैसर्स जवाहरकांता

३, विधानसभा मार्ग, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

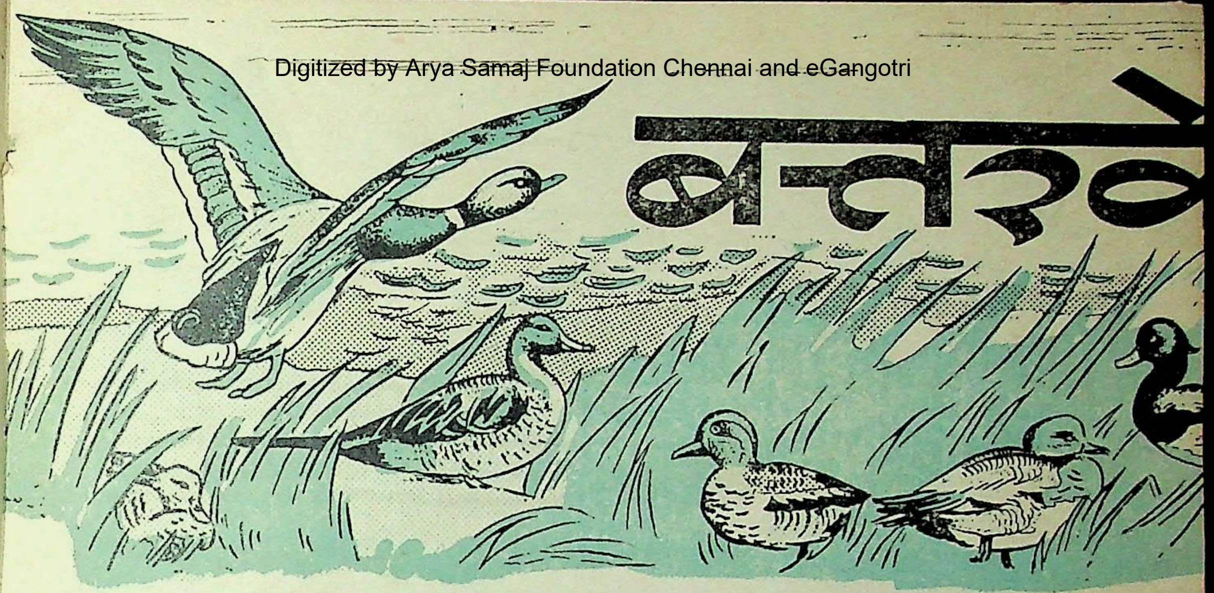

बत्तखें

सुरेशसिंह

जाड़ा आया नहीं कि हमारे यहाँ के जलाशय बत्तखों से गुंजरित हो उठते हैं। ये रंग-बिरंगी बत्तखें उत्तर की ओर से आती हैं और जाड़ा समाप्त होते-होते हमारे जलाशयों को खाली भी कर जाती हैं। सितम्बर के आरम्भ में उत्तर की ओर से आती हुई ये बत्तखें दक्षिण की ओर बढ़ती जाती हैं। लंका तक पहुँचकर पुनः उत्तर की ओर घूम पड़ती हैं और मार्च समाप्त होते-होते जैसी आयी थीं, वैसी ही चली जातीं हैं। इनका परिव्रजन का यह क्रम अटूट चलता ही रहता है।

यहाँ आनेवाली बत्तखें दो प्रकार की होती हैं—ऋतुकालिक और बारहमासी। ऋतुकालिक बत्तखें वे हैं जो ऊपर लिखे अनुसार ऋतु-विशेष में ही आती-जाती हैं और बारहमासी वे हैं जो बारहों महीने यहाँ बनी रहती हैं। जाड़ों में एकत्र हुई कुल बत्तखों में से स्थानीय बत्तखें अल्पसंख्यक होती हैं और अतिथि-बत्तखें बहुसंख्यक। बृहत् शरीर की नर बत्तख 'बत' कहलाती है। यही वास्तव में हमारा कलहंस है। इसकी भी अनेक जातियाँ हैं; किन्तु हमारे देश में तो सवन अर्थात् सोनहंस (Barred-headed goose) ही अधिक संख्या में आते हैं। ये हंस श्वेत आभायुक्त हलके स्लेटी रंग के होते हैं। इनके सिर पर गहरे भूरे रंग की दो चौड़ी धारियाँ पड़ी रहती हैं। लम्बाई में ये करीब ढाई फुट के होते हैं। इनकी गर्दनें हंस जैसी लम्बी होती हैं।

छोटी बत्तखें भी कम संख्या में नहीं होतीं। ये पचासों जाति की होती हैं। बारहमासी श्रेणी में पाँच प्रकार की बत्तखें होती हैं: (१) नकटा (comb duck), (२) गिर्री (cotton teal), (३) छोटी सिलही (Lesser whistling teal), (४) बड़ी सिलही (Larger w. teal) और (५) बेर (Spotted bill)। इनकी पहिचानें इस प्रकार हैं: नकटा की चोंच पर उठा

यही वास्तव में हमारा कलहंस है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ कुब्बक; बेर की चोंच पर पीले बेर जैसे दो निशान; गिर्री का छोटा कद और दोनों सिलहियों के शरीर का नारंगी रंग। गिर्री के अतिरिक्त शेष चारों प्रकार की बत्तखें पेड़ों पर भी रहने की अभ्यस्त हैं। वहीं वे अपने अंडे भी देती हैं।

ऋतुकालिक बत्तखों में प्रमुख हैं : सुर्खाब अर्थात् चकवा-चकवी (Ruddy sheldrake), सींखपर अर्थात् पुछार (Pintail) और नीलसर (Mallard)। सुर्खाब को चक्रवाक भी कहते हैं। यही वह नारंगी रंग का हंसों का जोड़ा है जिसके बारे में कवियों ने कल्पना की है कि यह जोड़ा रातों को बिछुड़ जाता है और दिन निकलने पर ही मिलता है। प्राणी-विज्ञान इस कल्पना का समर्थन नहीं करता। यह अवश्य है कि अधिकतर इसका जोड़ा दिन में ही दिखायी पड़ता है।

सींखपर बत्तख को यह नाम इसलिए दिया गया है कि इसकी पूँछ के पीछे सींखनुमा पतले और नुकीले, दो अतिरिक्त पंख निकले रहते हैं। नीलसर नाम तो नीले रंग के सिर से ही स्पष्ट है।

छोटी बत्तखों में मुख्यतः चैती (Common teal), मैल (Gadwall), तिदारी (Shoveller) और पतेरा (Wigeon) हैं। इनमें चैती अधिक प्रसिद्ध है। चैती और चैतवा एक ही शक्लोसूरत के होते हैं। इनके डैनों के मध्य एक चौड़ी हरी पट्टी रहती है। मैल बत्तख तो नाम से ही स्पष्ट है कि मटमैली होती है। तिदारी की चोंच चौड़ी, खुरपी सरीखी होती है। पतेरा बत्तख कद में छोटी मगर सुडौल होती है। इसके नर-बत का सिर लाल रंग का होता है।

इन सबसे अलग, पनडुब्बी जाति की भी बत्तखें होती हैं। वे पानी में १००-१५० फुट तक गहरी डुबकी लगाने तथा तैरने में बड़ी कुशल होती हैं। इनमें भी लाल-सर (Red headed pochard) तथा

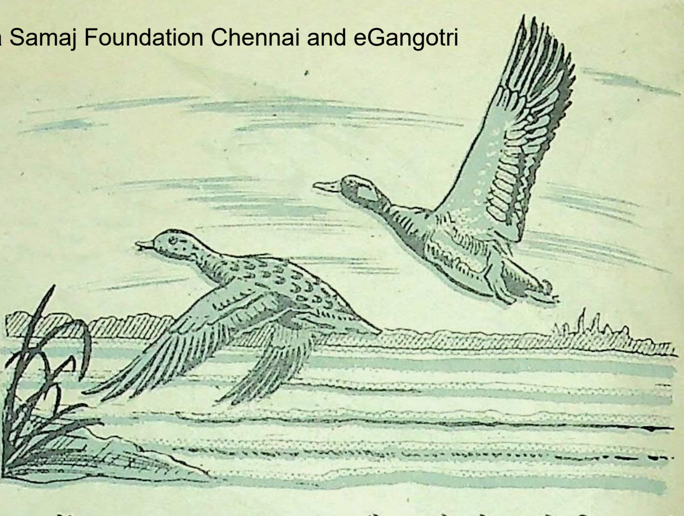

बत्तखों का उड़ना, इनका अपना कौशल है जो सबसे निराला है

बत्तखों की अपनी दुनिया : १. पनडुब्बी बत्तख (करछिया), २. चैती, ३. ४. शाहचकवा,

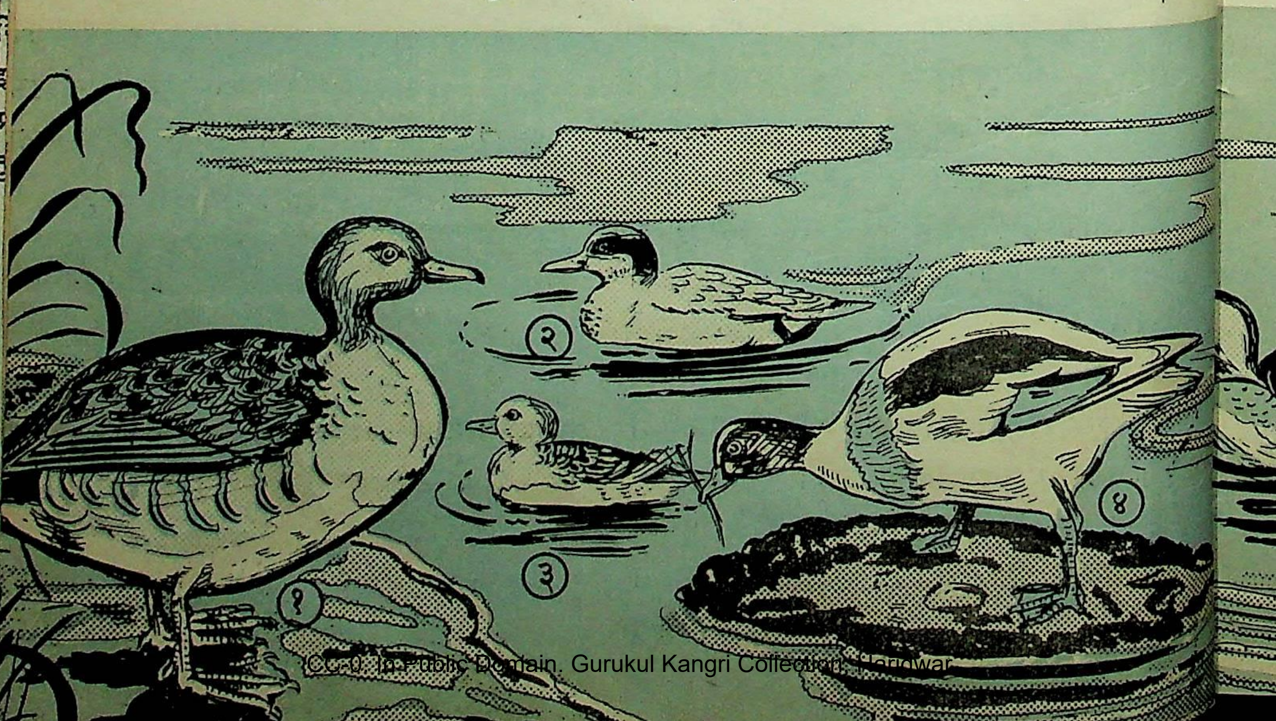

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करछिया अथवा बुडार (White-eyed pochard) जाति की होती हैं। लालसर तो स्वभावतः ही लाल सिरवाली होती हैं जबकि बुडार बत्तखें काली तथा सफेद होती हैं। इनके सिर पर पीछे की ओर एक कलगी सी लगी रहती है। इन्हीं में छोटी पनडुब्बी (Little grebe) तथा बड़ी पनडुब्बी (Crested grebe) नामक बत्तखें भी होती हैं।

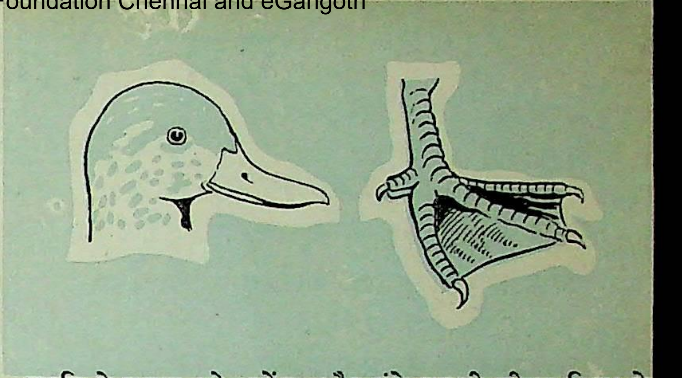

प्रकृति ने बत्तख को चोंच और पंजे उसकी जीवन-क्रिया के अनुकूल ही दिये हैं। चोंच ऐसी जो कीचड़ पानी अथवा दलदल से अपना शिकार, अपना भोजन लपक सके और झिल्ली से जुड़े हुए पाँव ऐसे, जो इसके अधिकांश जल-जीवन के अनुरूप हों, तैरने में सुविधापूर्ण हों

बत्तखों का उड़न-कौशल सचमुच विलक्षण है। ये चीलों की तरह पंख फैलाकर हवा में नहीं उतरातीं, बल्कि तेजी से पर मारती हुई उड़ती रहती हैं। उतरते समय अपने पंखों की गति को रोककर गोलाकार उतराती हुई तालाब किनारे उतर पड़ती हैं।

इनके पांवों की रचना इनकी जीवन-क्रिया के अनुरूप ही होती है। इन्हें पानी में भी अधिक रहना पड़ता है, अतः इनकी अंगुलियाँ एक झिल्ली से जुड़ी रहती हैं। इससे इन्हें पानी में तैरने में सुविधा रहती है। इनकी चोंच चपटी होती है उसमें ऊपर नीचे बारीक दाँते से होते हैं। उसी के सहारे ये घास-पतवार जैसा अपना भोजन आसानी से नोच लेती हैं।

इनके सहजीवन में ऋतुकालिक क्रिया एक ऐसी विशेषता है जो इनकी अपनी ही है, अन्य प्राणियों में नहीं मिलती। जब घोंसला बनाने और अण्डे देने का समय आता है तब एकाएक तो आप इनके नर-मादा को पहिचान भी न सकेंगे। नर-बत अपने चटकीले-चमकीले परों को गिराकर मटमैले पर धारण कर लेता है। इसकी उस अवस्था को ग्रहणावस्था (eclipsing) कहते हैं। उसे यह ग्रहण ग्रीष्म के मध्यकाल से लग जाता है। उन चमकीले परों में उसके उड़नेवाले पंख भी साथ ही झड़ जाते हैं। अब तो उसे अपने घोंसले की रक्षा करनी होती है न! इस विचित्रता का पूरा हल अभी भी विज्ञान को नहीं मिल पाया है,

५. अमरीकन (वुड-डक) ६. सींखपर ७. सब्जपरी (ग्रीनविंग) ८. सुर्खाब (चक्रवाक)

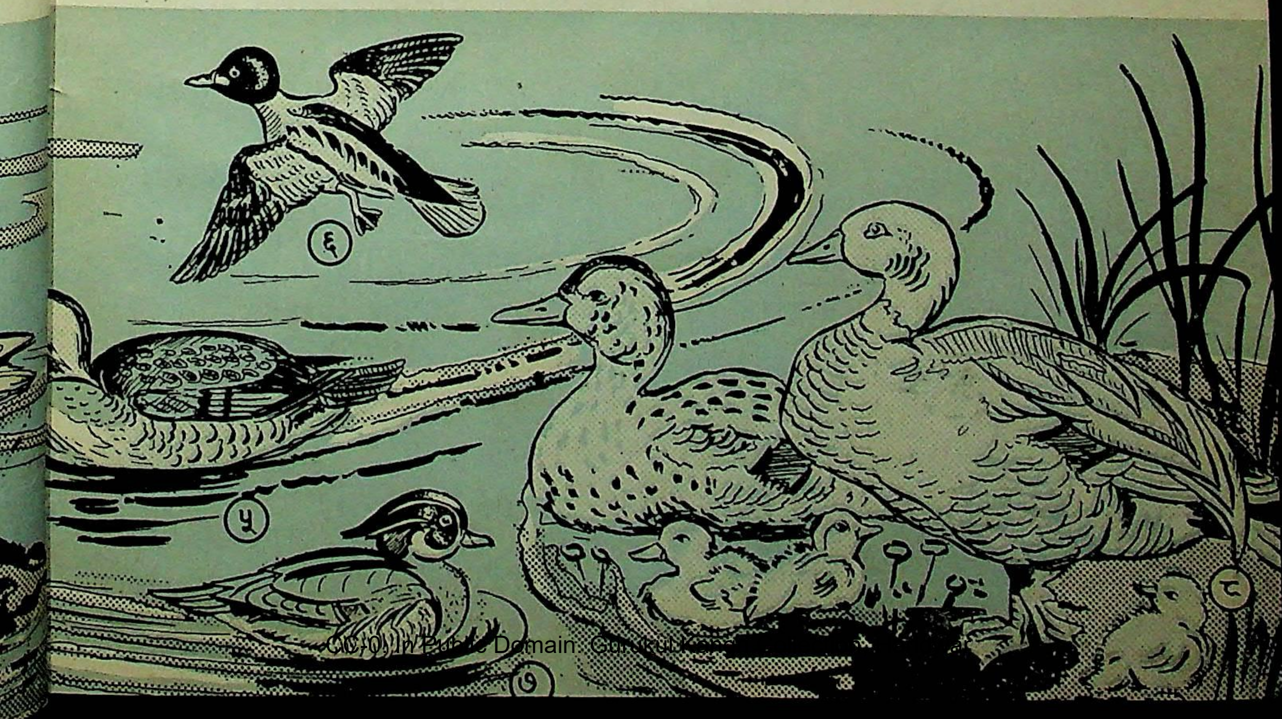

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे

सूचना

वर्तमान संकटकालीन परिस्थिति के कारण निम्नांकित रियाअतें दिनांक १ जनवरी १९६३ से बन्द कर दी जायेंगी :

आई. आर. सी. ए. कोचिंग टैरिफ नं. १८ के नियम नं. ४०१ के अनुबन्ध की क्रम संख्या — **जिन पर यह सूचना लागू होगी**

१, २.	....	भारतीय एवं अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिताएं तथा समस्त खेल-कूद, एथ्लेटिक स्पोर्ट्स आदि ।
३.	....	पोलो की टीमें ।
४.	....	गणतन्त्र-समारोह तथा आकाशवाणी के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में सम्मिलित होनेवाले, मान्य व्यावसायिक मनोरंजन-दल, समूह तथा कलाकार आदि ।
७.	....	शैक्षणिक प्रयोजन के लिए यात्रार्थी भारतीय एवं विदेशी छात्रगण ।
८.	....	भारत में विद्यार्जन करते हुए विदेशी छात्रगण ।
९.	....	न्यायशास्त्र के शिक्षार्थी छात्रगण ।
१८.	....	सामुदायिक योजनाओं में भाग लेनेवाले अवैतनिक कार्यकर्तागण, विद्यार्थियों सहित ।
१९.	....	सर्विस सिविल इण्टरनेशनल के स्वयंसेवकगण ।
२०.	....	राष्ट्र की प्रसार-सेवाओं में अवैतनिक सम्मिलित होनेवाले व्यक्ति तथा उनके दल ।
२१.	....	किसानों एवं औद्योगिक श्रमिकों के दल (प्रत्येक दल कम से कम २० व्यक्तियों का) ।
२२.	....	राज्य विधान सभा के सदस्यों के दल (प्रत्येक दल कम से कम २० सदस्यों का) ।
२४.	....	प्राइमरी, सैकण्डरी, हाईस्कूल तथा हायर सैकण्डरी स्कूलों के अध्यापक एवं मान्य अनाथालयों के शिक्षक ।
२५.	....	कामनवेल्थ पार्लमेण्टरी एसोसिएशन की समस्त शाखाओं के सदस्य और उनके परिवार ।
२६.	....	शैक्षणिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्त्व की अखिल भारतीय संस्थाओं के वार्षिक अधिवेशनों में सम्मिलित होनेवाले व्यक्ति तथा समय-समय पर रेलवे बोर्ड द्वारा दी जानेवाली एतदर्थ (एडहॉक) रियाअतें ।
२८.	....	मान्यता प्राप्त अजायबघरों (पशुसंग्रहालयों) के लिए भेजे जानेवाले जानवर तथा परिन्दे ।
२९.	....	प्रदर्शनी के लिए भेजे जानेवाले कुत्ते, तीतर, बटेर, मुर्गियाँ तथा अन्य परिन्दे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

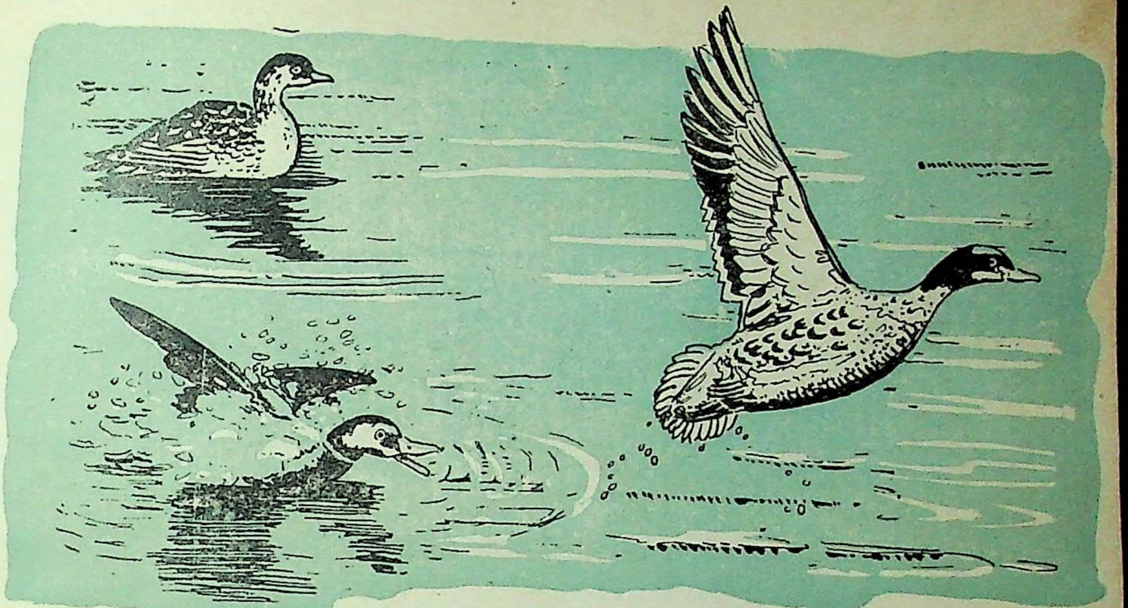

शरद् का प्रारम्भ। नीलसर-युगल जलक्रीड़ा-मग्न। गर्मियों में झड़े हुए पंख नये उग आए हैं। ऋतु-सहवास के भी दिन हैं। किसी का भी विक्षेप सह्य नहीं; अतः बिन बुलाये विक्षेपकर्त्ता को नर-बत खदेड़े दे रहा है

क्योंकि यह विचित्रता अधिकतर पृथ्वी के उतरार्द्ध में रहनेवाली बत्तखों में ही पायी गई है। नर को अपने गिराये हुए पंख शरद ऋतु में पुनः प्राप्त हो जाते हैं। इनके घोंसले सीधे-सादे होते हैं और जलाशयों के निकट तथा धरती के गड्ढों अथवा पेड़ों की खोहों में पाये जाते हैं। मादा एक साथ १० से १२ तक अण्डे देती है। नन्हे बच्चे पैदा होते ही चलने-फिरने लगते हैं।

इनकी हजारों मील की उड़ानें तथा परदेशों का गमनागमन निस्सन्देह प्रकृति का एक अबूझ आश्चर्य ही है। इनकी यात्राओं का समय और पथ ऐसा निर्धारित सा रहता है कि उसमें अन्तर नहीं आने पाता। और भी आश्चर्य तो इस बात का है कि इनके झुण्डों में ऐसे भी होते हैं जो उसी वर्ष पैदा हुए हों और पिछली यात्रा से उनका सम्बन्ध ही न रहा हो, फिर भी यात्रा के पथ और समय की अचूकता सचमुच विलक्षण ही कही जायगी। बिना भूले-भटके, बिना किसी मार्ग दर्शक के ये परिव्राजक पक्षी, ये बत्तखें प्रतिवर्ष हमारे यहाँ आती हैं और आतिथ्य ग्रहण करके अपनी अनन्त यात्रा की ओर चल भी पड़ती हैं। ●

पेड़ पर ओट में बनाये हुए अपने घोंसले में इन ग्यारह अण्डों को सम्हाल कर इनकी मादा अभी-अभी गई है एक डुबकी लगाने, आती ही होगी। ये अकेले, अरक्षित फिर भी नहीं है। नर-बत नजदीक ही किसी डाल पर निगरानी करता बैठा होगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमपात और तुषारवर्षा

दीनानाथ भार्गव

वायुमण्डल में ऊपर उठती हुई जलवाष्प को यदि एकाएक शून्य से कम ताप-वाला क्षेत्र मिल जाता है तो वह बगैर द्रव में परिणत हुए, सीधे ही ठोस अवस्था में आ जाती है। ऐसी दशा में धुनी हुई रुई के गालों के समान आकाश से नन्हे-मोटे हिमकण गिरने लगते हैं। कभी-कभी तो मेघरहित आकाश से भी गिरते हैं। यह इसलिए कि जब ताप शून्य से कम होता है तब वाष्प को जमने के लिए केवल 'नाभि' की आवश्यकता होती है जो उसे वायुण्डल में व्याप्त रजकणों के रूप में मिल जाते हैं।

ध्रुवीय प्रदेशों में प्रायः वर्ष भर हिम-पात होता रहता है। समशीतोष्ण प्रदेशों में केवल शीतकाल में बर्फ पड़ती है। हमारे देश जैसे स्थानों में जो उष्ण कटिबन्ध में हैं, हिमपात के दर्शन केवल शीतकाल में पहाड़ों पर होते हैं। मैदानी प्रदेशों में रहने वाले केवल गर्मियों में ही पहाड़ों पर जाते हैं। अतः हिम-दर्शन उनके लिए दुर्लभ ही रहता है। यूनान के लोगों ने हिम को उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर गीला ऊन (wet wool) का नाम दिया था। यह नाम तो उन्होंने केवल हिम के ढेर को देखकर ही दिया था। इससे बढ़कर तो हिम-पत्रों (snow-flakes) का सौन्दर्य है। हिम-पत्र भिन्न-भिन्न आकार के और छोटे-बड़े रवों के बने होते हैं। इनका आकार वायुमण्डल की उस दशा पर निर्भर करता है जिसमें ये बनते हैं। इनमें विचित्रता यह है कि शून्य के लगभग ताप में बननेवाले रवे बड़े होते हैं और शून्य से निम्नतर ताप पर बननेवाले छोटे। यही कारण है कि यूरोपीय प्रदेशों की शीतमय गर्मियों में हिमपात अधिक और बड़े रवों का तथा सर्दियों में कम और छोटे रवों का होता है। प्रकृति का यह असत्य प्रतीत होनेवाला विचित्र सत्य है। ध्रुवीय प्रदेशों में ताप शून्य से बहुत कम होता है। वहाँ रजकण जैसी बर्फ पड़ती है जिसे हिम-रज (sand-snow) कहते हैं। इस प्रकार की बर्फ बहुत खुरदरी होती है और किसी बर्फ की गाड़ी (sledge) तथा स्की-ब्लेड (ski-blade) को जल्द काट सकती है। इससे मिलता-जुलता स्वरूप इंग्लैण्ड और मध्य यूरोप में देखने को मिलता है। वहाँ उसे हीरक रज (diamond-dust) कहते हैं। वे नन्हे रवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी पर न गिरकर हवा में ही उतराते रहते हैं और सूर्य की किरणों को हीरे की भाँति शत-सहस्र आभा में छितरा देते हैं।

उष्ण प्रदेशों में हिम-रवों का बनना शिशिर ऋतु में आकाश में देखा जा सकता है। तीतरपंखी मेघ (cirrus) जो पृथ्वी से ऊपर ४ से ७ मील तक की ऊँचाई में सफेद पंखों की तरह फैले हुए होते हैं, हिम रवों से ही बने होते हैं। कभी-कभी सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर जो एक प्रभा-मण्डल सा दिखायी पड़ता है, वह इन मेघों की उपस्थिति के कारण किरणों के परावर्तन द्वारा ही बनता है। शीतकाल में प्राय: जेट विमान के पीछे जो सफेद लकीर सी बन जाती है, वह उस विमान द्वारा निष्कासित गैस पर जमे हुए हिम-कणों द्वारा ही बनती है।

हिम-पत्रों का सूक्ष्म सौन्दर्य तथा विलक्षण रचना केवल सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखी जा सकती है। कभी कुछ बड़े पत्र नंगी आँखों से भी देखे जा सकते हैं। आकार में ये चौरस, पट्टी, नली तथा सुई की भाँति होते हैं। विभिन्न आकार के होने पर भी इनकी रचना मूलत: षट्कोणीय होती है। अधिक सुन्दर हिम-पत्र प्राय: पट्टिकाकार होते हैं। इनमें भी कुछ फीते के बने फूल जैसे होते हैं। अनेक पत्रों के अन्दर बारीक नलिकाओं की मनोहर पच्चीकारी होती है। कफबटन नामक पत्र की रचना भी अति विचित्र होती है। उसमें दो षट्भुजीय रवे एक षट्भुजीय नलिका द्वारा जुड़े होते हैं। षट्भुजीय पत्रों की जगह कभी-कभी त्रिभुजीय पत्र भी मिलते हैं। निचले स्तर के मेघों में बननेवाले हिम-पत्र आकार में बड़े और शाखायुक्त होते हैं। ऊँचे मेघों में बननेवाले अपेक्षाकृत छोटे होते हैं।

प्रकृति भी कभी-कभी खिलवाड़ पर उतर आती है! बायें हाथ में देखिये मुर्गी का अण्डा और दायें हाथ में उसके मुकाबले कितना बड़ा हिम-कन्दुक अर्थात् गेंदनुमा ओला, वह भी मध्य-ग्रीष्म ऋतु में! अमरीका के इलिनाय (Illinois) नगर से प्राप्त नमूना

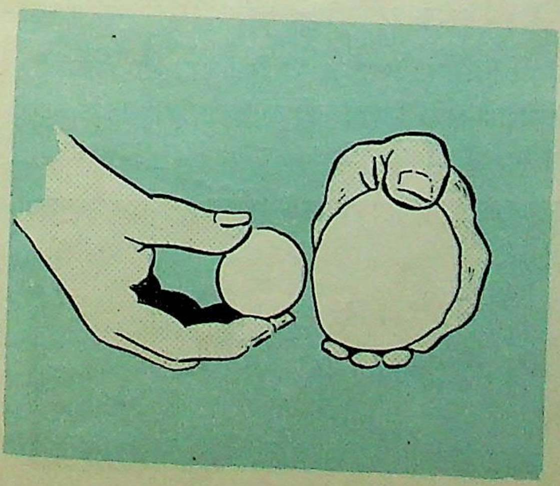

यह तो अनुमान लगाया ही जा सकता है कि गलने से पहले ही हिम-पत्रों का फोटो लेना कितना दुष्कर कार्य है। जिस व्यक्ति ने प्रथम बार यह प्रयास किया था उसने १००० विभिन्न पत्रों के फोटो उतारे थे। इन पत्रों की विभिन्नता इतनी असंख्य होती है कि एक एकड़ भूमि में यदि हिम-पत्र छा जाएँ तो सम्भव है कि वे सबके सब विभिन्न रचनाओं के हों! इसलिये इनके चित्रों का उपयोग स्वर्णकार और अन्य कारीगर नयी डिजाइनें बनाने में करते हैं।

हिम-रवों की प्रतिमूर्तियाँ

सन् १९४० में अमरीकन वैज्ञानिक विन्सेन्ट जे. शेफर ने आकाश से गिरनेवाले हिम-रवों के साँचे बनाने की एक सरल विधि प्रस्तुत की। इथीलिन डाइक्लोराइड में कुछ रासायनिक पदार्थों को घोलकर एक प्रकार का तरल प्लास्टिक तैयार किया। उसे खुली हवा में शून्य से भी कम ताप पर रख दिया। ज्यों-ज्यों हिम-पत्र रकाबी में गिरते थे, वह तरल पदार्थ उनके गिर्द लिपटता जाता था। तुरन्त ही इथीलिन डाइक्लोराइड उड़ जाने पर वे हिम-पत्र एक पतले पारदर्शक घोल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैद हो जाते थे। अन्दर की बर्फ गल जाने पर वह खोल एक ऐसे साँचे का काम देता था जिसमें उस हिमपत्र की सभी रचनात्मक बारीकियाँ मौजूद होती थीं। इस विधि द्वारा प्राप्त प्रतिमूर्तियों में प्रकाश के आवर्तन और परावर्तन के वैसे ही गुण पाये जाते हैं जैसे प्राकृतिक हिम-रवों में।

द्वितीय महायुद्ध में इन प्रतिमूर्तियों से काफी सहायता मिली थी। बर्फीले तूफानों में उड़ते वायुयानों के अन्दर लगे वायरलेस को ठप्प करनेवाले हिमकणों का अध्ययन बड़ा सहायक सिद्ध हुआ था। उड़ता हुआ वायुयान जब हिमकणों से टकराता है तो घर्षण द्वारा उत्पन्न विद्युत् के कारण विमान अनेक भागों पर विद्युतावेशित हो जाता है। जब वह आवेश तीव्र हो जाता है तब वायुमण्डल आयनीकृत हो जाता है। फलतः विमान के पंखों के सिरों पर विद्युतावेश के कारण चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। चिनगारियों के कारण वायरलेस में अत्यधिक शोर उत्पन्न हो जाता है।

हिम-रवों के ढाँचे में हवा भरी रहती है जो उन्हें हलका बनाये रखती है। हिमकणों का घनत्व सामान्य प्रयोग में आनेवाली बर्फ के घनत्व का १५वां भाग होता है। 'हिम' शब्द से ही शुभ्रता का आभास होता है। हिम वास्तव में श्वेत नहीं होता। हिम के रवे मूल-स्वरूप में तो काँच की तरह रंगहीन और पारदर्शी होते हैं। जब पृथ्वी पर बिछ जाते हैं तब उनकी विभिन्न सतहों से उत्पन्न प्रकाश के आवर्तन-परावर्तन के कारण वे सफेद तथा विभिन्न रंग के लगते हैं। आस-पास के वातावरण का रंग भी उनमें झलकता है। इसीलिए प्रायः लाल, हरी, नीली और काली बर्फ तक देखने को मिलती है।

चार्ल्स डारविन ने एक बार बर्फ पर अपने काफिले के साथ गुजरते हुए देखा था कि बर्फ पर बने उसके खच्चरों के पदचिह्न लाल रंग के थे। पहले तो उन्हें सन्देह हुआ कि कहीं खच्चरों के पाँवों से खून न निकल रहा हो, परन्तु खोज करने पर पता लगा कि वह लाल रंग बर्फ में जमी एक प्रकार की शैवाल (algae) के कारण था। ऐसे ही नानसेन नामक एक अन्य पर्यटक ने गुलाबी रंग का हिम देखा था। इसी प्रकार शैवाल के कारण ही हरा और नीला हिम भी देखने को मिलता है।

जिन प्रदेशों में अधिक शीत पड़ता है वहाँ हिम-राशि वनस्पति के लिए कम्बल का कार्य करती है। हिम ताप का कुचालक है। अतः इसके आवरण में पेड़-पौधे बाहरी ठंड से सुरक्षित रहते हैं। वसंत में हिम पिघलने पर बना हुआ जल नन्हें बीजों और अंकुरों को उचित समय पर उगने में सहायता देता है। इसके अतिरिक्त बालू, मिट्टी आदि की

हिमपत्रों की सुन्दरता तो अप्रतिम होती ही है, इनके चित्र-विचित्र डिजाइनों की विविधता भी अनन्त है। इन्हीं से स्वर्णकार जैसे अन्यान्य कलाकार नित नये डिजाइनों की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। 'कफ-बटन' नामक डिजाइन मध्य में है

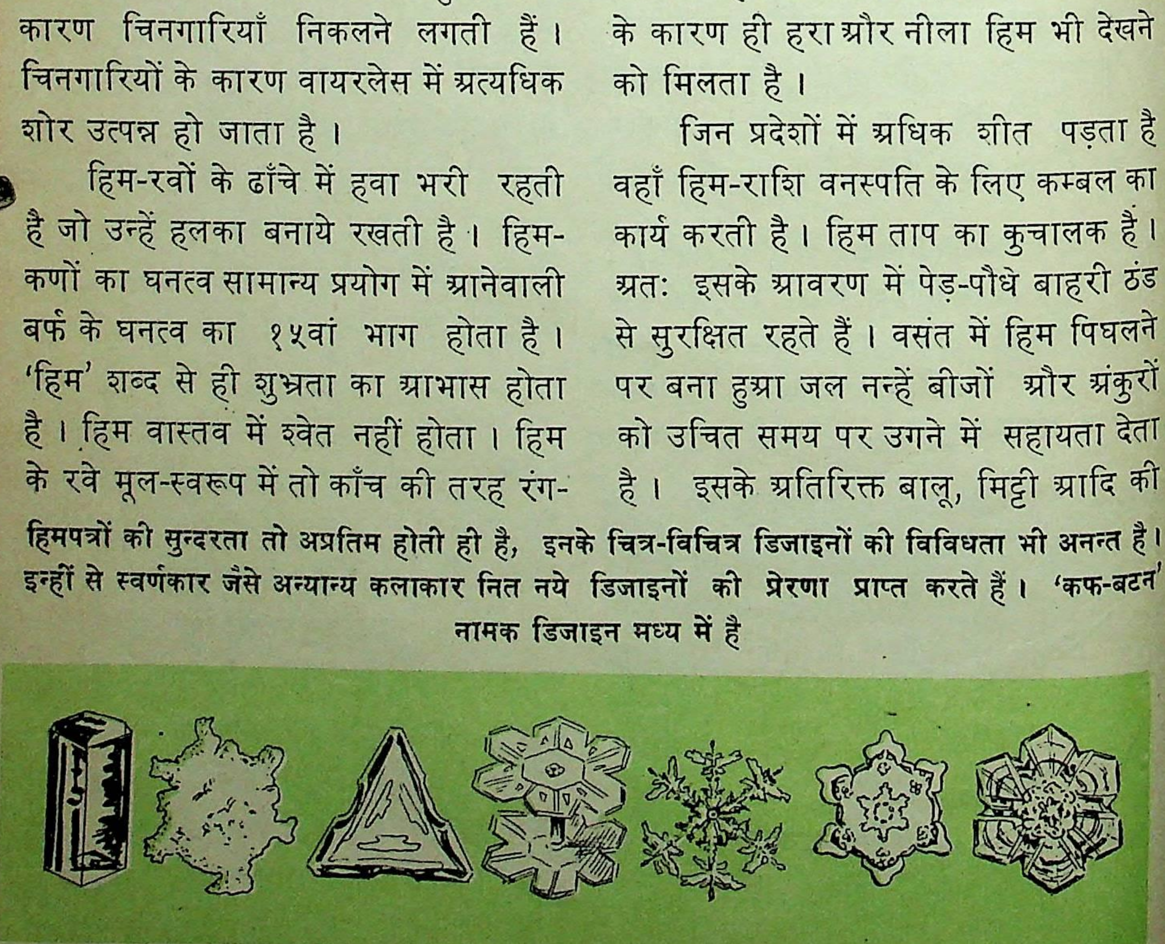

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

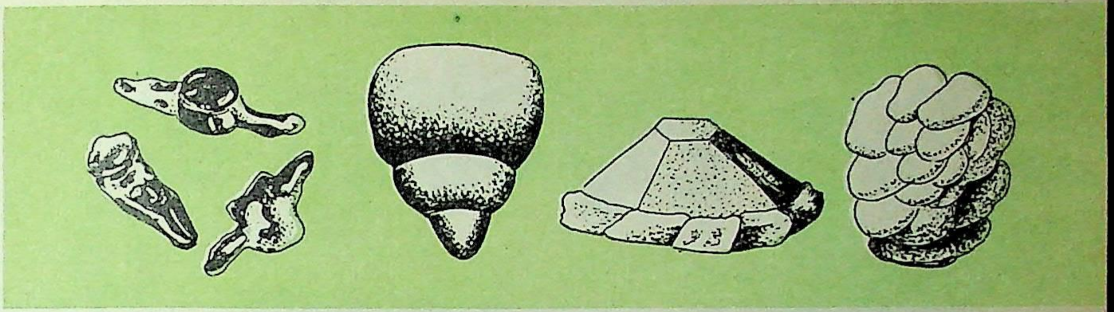

हिम-खण्ड (छोटे-बड़े ओले) हमेशा एक ही आकार, गेंद, अण्डा या गोली जैसे नहीं होते। विविधता इनमें भी होती है। ये चारों आकार विचित्र तो हैं ही, असाधारण भी हैं, अर्थात् सहज ही नजर नहीं आते। इनमें बायें से प्रथम आकार तो लगभग दुर्लभ ही है

भी सुरक्षा इससे हो जाती है। आर्कटिक प्रदेशों में बर्फ की चद्दर में दबी बालू तेज हवा के झोंकों से इधर-उधर नहीं उड़ पाती।

बड़े नगरों में हिमपात से काफी हानि होती है। कई दिनों तक यातायात रुका रहता है। मार्ग में जमी हुई बर्फ को साफ कराना काफी खर्चीला सिद्ध होता है। इंग्लैण्ड के लीड्स में १९३८-३९ के हिमपात में राजपथ से बर्फ साफ कराने में १०,००० पौंड व्यय हुआ था!

कृत्रिम हिम

सन् १९४६ में अमरीका में कृत्रिम हिम बनाने का प्रयोग किया गया। चार मील ऊँचे बलाहक मेघ (Alto stratus) पर छः पौंड कार्बन डाइआक्साइड पाउडर वायुयानों द्वारा छिड़का गया। प्रयोग काफी सफल रहा और उस प्रकार प्राप्त हिमकणों में मूलतः कोई अन्तर न था।

तुषार

पृथ्वीतल और उसके आसपास के वातावरण का ताप जब शून्य से कम हो जाता है तब जलवाष्प बिना द्रव में बदले बर्फ के रूप में चारों ओर जम जाती है। इसे तुषार कहते हैं। तुषार के भी बड़े सुन्दर नमूने खिड़कियों और दरवाजों के शीशों पर बन जाते हैं। हिम-कणों जैसी विभिन्नता इनमें नहीं पायी जाती। जब ताप $-2^\circ C$ से $0^\circ C$ के मध्य रहता है तब हलका तुषार पड़ता है। $-२०^\circ C$ से भी ताप घटने पर घना तुषार पड़ता है। टोरन्टो नगर में एक बार इतना घना तुषार पड़ा कि एक मकान की आग बुझाने के लिए दमकलों से निकला हुआ पानी मकान पर तुषार बनकर गिर रहा था! १००-१५० वर्ष पहले इंग्लैण्ड में भी इतना घना तुषार पड़ता था कि टेम्स नदी का पानी जम जाया करता था और उस पर तुषार मेले लगा करते थे। सबसे बड़ा तुषार मेला सन् १६८२ का था जबकि वेस्ट मिनिस्टर से टेम्पल तक मेला-दर्शकों की घोड़ा गाड़ियाँ चला करता थीं।

ओले

जमे हुए पानी का एक रूप ओला भी है। बर्फीले तूफान का वेग इतना अधिक होता है कि जमे हुए जल-कण बड़े वेग से इधर-उधर, ऊपर-नीचे उड़ने लगते हैं। जब ये आकार में बड़े हो जाते हैं तब ओलों के रूप में नीचे गिरने लगते हैं। प्रत्येक ओले में, तले-ऊपर श्वेत, पारदर्शक हिम की पर्तें होती हैं। ये विभिन्न आकार-प्रकार के होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तम्बाकू की कहानी

अनिलचन्द्र

तम्बाकू की कहानी का स्रोत करीब ढाई हजार वर्ष पहले, ईसा से ७०० पूर्व के काल में मिलता है । सिगार या सिगरेट के फैशन का प्रारम्भ सोलहवीं शताब्दी के उत्तरकाल से माना जाता है । इसी से तो जुड़ी हुई वह कहानी है जिसमें ब्रिटेन के इतिहास-प्रसिद्ध सर वाल्टर रेले के मुँह से इसका धुँआ निकलता देखकर उनका नौकर एक बाल्टी पानी उन पर उंडेलकर अड़ोस-पड़ोस के लोगों को मदद के लिए बुला लाया था !

प्रारम्भिक परिचय

१५-१६वीं शताब्दी में नयी दुनिया की खोज में निकलनेवाले साहसिक नाविकों में से अन्ततः कोलम्बस जब अमरीका पहुँचा तो वहीं उसे तम्बाकू का प्रथम परिचय मिला । वहाँ के निवासियों का तम्बाकू पीने का ढंग बहुत कुछ आज के ढंग में मिलता-जुलता ही था । वहाँ प्रचलित होते हुए भी धूम्रपान केवल विशेष अवसरों तथा प्रयोजनों के लिए ही सीमित था । यह खासकर शान्ति और मैत्री का सूचक माना जाता था । इसके औषधीय गुण-दोषों का पता लगने पर ही इसे पूर्वीय देशों में, सर्वप्रथम यूरोप के स्पेन, फ्रांस तथा ब्रिटेन में लाया गया । सर्वप्रथम फ्रेंच राजदूत जीन निकोट (Jean Nicot) ने इसके बीज अपनी साम्राज्ञी कैथेरीन को भेंट किये । उसी पर इन पौधों के वर्ग को निकोटिना (Nicotina) नाम दिया गया । टॉबेको (Tobacco) नाम इसे मध्य अमरीका की कैरीबियन भाषा के शब्द टॉबेगो (*Tobago*) पर दिया गया है। यह नाम उस विचित्र नली से दिया गया है जिसमें भरकर वे तम्बाकू (tobacco) पीते थे । यही नाम उस बेलनाकार आकृति का भी सूचक है जो पत्ते को गोल लपेटकर उसमें तम्बाकू भरकर पीने के लिए बनायी जाती थी ।

पत्ती-पत्ती में भेद

तम्बाकू के पौधों की ५० से भी अधिक किस्में निर्धारित की जा चुकी हैं । उनमें से केवल तीन ही किस्में अधिकतर उपयोग में आती हैं । इनमें प्रथम है, मध्य अमरीका तथा वेस्टइण्डीज में उत्पादित निकोटियाना टबेकम (*Nicotiana tabacum*) जो छः फुट से भी अधिक ऊँचा उगता है और गुलाबी फूल लिये होता है । अमरीका का तम्बाकू उद्योग इसी पर आधारित है । दूसरा है मैक्सिको का एन. रस्टिका (*N. rustica*) । यह पौधा चार फुट की ऊँचाई का होता है और इसमें पीले फूल लगते हैं । टर्किश मिश्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(व्लैण्ड) और इजिप्शियन तम्बाकू इसी से बनायी जाती हैं। तीसरा है एन. पर्सिका (*N. Persica*)। इसमें सफेद फूल लगते हैं। यह अन्य प्रदेशों में कम प्रचलित है और केवल ईरान (Persia जिस पर Persica नाम दिया गया है) में ही उपजाया जाता है। वहाँ के बहुप्रचलित हुक्कों में इसी का उपयोग होता है। विविध श्रेणी के घटिया-बढ़िया तम्बाकू के मिश्रण तैयार करने के लिए पत्तों का चुनाव बड़ी बारीकी से किया जाता है। चुनाव में निम्न बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है: पौधे की किस्म, पत्ते तैयार करने की विधि, पत्ते की विशेष उपयोगिता तथा पौधे का उत्पत्ति-काल।

पत्तों को जिन अनेक श्रेणियों में बांटा जाता है उनमें मुख्यतः अग्नि में सुखाये हुए, अंधेरे तथा सामान्य हवा में सुखाये हुए, गर्म हवा में सुखाये हुए, सिगार-रैपर, सिगार बाइण्डर, सिगार फिलर, बर्ले, मेरीलैण्ड, तथा पेरिक हैं। ये समस्त किस्में अधिकतर एन. टबेकम (*N. Tabacum*) के पौधे से तैयार की जाती हैं।

तम्बाकू की दो प्रधान जातियाँ—**१. मेक्सिको में उत्पादित, चार फुट ऊँचा निकोटीना रस्टिका २. वेस्ट इण्डीज का छः फुटा-निकोटीना टबेकम**

तम्बाकू की खेती

तम्बाकू का पौधा केवल एक वर्ष फलता-फूलता है। यह पौधा खुरदरा होता है। इसके पत्ते झुके-झुके पड़ते हैं और नीचे के सिरे पर तने से लिपटे रहते हैं। स्पर्श में चिपचिपे होते हैं, क्योंकि पत्तों की सतह के रोयों से चिपचिपा द्रव रिसता रहता है। बिगुल के आकार के इनके फूलों को खिलने से पहले जब वे कली के रूप में होते हैं उतार लेते हैं। इसके काले बीज इतने सूक्ष्म होते हैं कि ६० हजार बीज चाय का एक चम्मच भी पूरा नहीं भर सकते। इसके फूल स्व-परागण में समर्थ होते हैं। अधिकांश फूल सफेद ही होते हैं, किन्तु कई उप-श्रेणियों में पीले, गुलाबी, लाल रंग के भी होते हैं। फूल की पंखुरियों में पाँच नोकें होती हैं और पाँचों अलग-अलग खिली-खिली रहती हैं। पत्ते ही इस पौधे की जान हैं। पौधे की किस्म के साथ पत्ते के भी आकार-प्रकारों में भिन्नता रहती है। बड़े पौधों के पत्ते तीन-चार फुट लम्बे तथा डेढ़ दो फुट तक चौड़े होते हैं, जबकि छोटे से छोटे पत्ते (टर्किश पौधे के) केवल ३-४ इंच के ही रहते हैं। साधारण परिस्थितियों में एक पौधे से डेढ़ दो लाख (वजन केवल डेढ़ औंस) और विशेष परिस्थितियों में दस लाख तक बीज प्राप्त किये जा सकते हैं।

तम्बाकू के बीजों की बुवाई बड़ी सावधानी से की जाती है। इस पौधे को समशीतोष्ण जलवायु चाहिए। अतः गर्म प्रदेशों में ठंडा वातावरण तथा ठंडे प्रदेशों में गर्म वातावरण बनाए रखना पड़ता है। बीज यदि उत्तम प्रकार का है तो केवल आधे औंस की मात्रा १०० वर्ग गज भूमि के लिए पर्याप्त है। अनुकूल वातावरण में १०० वर्ग गज भूमि से १५ से २५ हजार तक पौधे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि मिट्टी उर्वरा हो, भली प्रकार जुती हुई हो और उसे खुली धूप मिल सकती हो। बीजों को लकड़ी के बुरादे तथा रेती जैसे तटस्थ पदार्थ में मिलाकर बिखेरते हैं ताकि वे इकसार बिखेरे जा सकें। काफी बारीक मिट्टी तथा समतल भूमि में इसके बीज हलके से दबाकर बोये जाते हैं।

लगभग दो ढाई महीने में इसके पौधे ६-७ इंच उभर आते हैं और पुनरोपण (transplanting) के लिये तैयार हो जाते हैं। सूर्यास्त के समय इसकी सिंचाई अधिक लाभप्रद होती है। पुनरोपण के पश्चात् पौधे की आवश्यक ऊँचाई आते ही सिरे के फूल और कलियाँ उतार ली जाती हैं। इस क्रिया को टापिंग (topping) अथवा डिसबडिंग (disbudding) कहते हैं। मिट्टी में पोटैशियम सल्फेट, कार्बनेट अथवा नाइट्रेट भली प्रकार देते रहने से पत्ते की उत्तमता तथा अग्निधारिता बढ़ती है और वानस्पतिक-रोगों का भय भी नहीं रहता। इस पौधे को Black root-rot, Bacterial leaf spot, Blue mould तथा Black shank जैसे वानस्पतिक रोगों का सदैव खतरा रहता है। इनसे रक्षा करने के लिये अनेक उपाय किए जाते हैं; उदाहरणार्थ साफ-सुथरी भूमि, पौधों का समय-समय पर स्थानान्तरण, दवाओं के छिड़काव तथा कुछ भिन्न-भिन्न श्रेणी के पौधों के संयोग द्वारा रोग-निरोधक नस्लें तैयार करना, आदि।

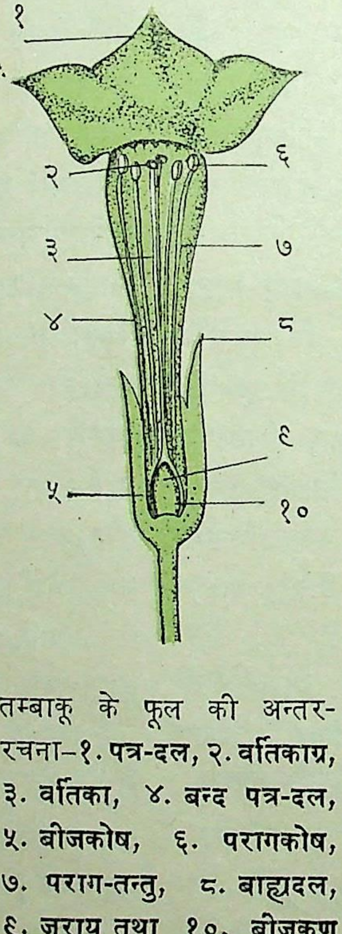

तम्बाकू के फूल की अन्तर-रचना–**१. पत्र-दल, २. वर्तिकाग्र, ३. वर्तिका, ४. बन्द पत्र-दल, ५. बीजकोष, ६. परागकोष, ७. पराग-तन्तु, ८. बाह्यदल, ९. जरायु तथा १०. बीजकण**

पुनरोपण के लगभग ७० से १३० दिन के अनन्तर तम्बाकू की कटाई कर ली जाती है। दिनों का अन्तर तथा कटाई की विधि में भिन्नता तम्बाकू की विभिन्न श्रेणियों पर निर्भर रहती है। कटाई के समय तथा बाद में पत्तों को टूटने-मुड़ने से बहुत सम्हालना पड़ता है। तम्बाकू को खाने-पीने लायक बनाने का काम इसके पश्चात् प्रारम्भ होता है। साधारणतया तम्बाकू पकाने (curing) की तीन विधियाँ काम में लायी जाती हैं: (१) खुली धूप-हवा, (२) आग तथा (३) आग की तप्त वायु (flue)। सूखने पर तम्बाकू का पत्ता टूट जाता है, चूर-चूर हो जाता है। अतः पकाने के लिये पत्तों को सूखने से पहले डंठल समेत नम वातावरण में लटकाये रहते हैं। वहाँ वे आर्द्र होते-होते नर्म हो जाते हैं और चाहे जिस तरह लपेटे-मोड़े जा सकते हैं। अब उन्हें डंठल से अलग कर लेते हैं और बड़े-छोटे छांट-छांटकर, गट्ठर बनाकर ५-६ फुट ऊँचे ढेर बना लेते हैं। उन ढेरों को १३०°F के स्थिर ताप पर ३-४ सप्ताह तक रखा जाता है। पककर तैयार होने पर सावधानीपूर्वक छांटकर अलग-अलग पैक कर लिए जाते हैं। विशेष जाति की पत्ती तैयार करने के लिये तो कुछ नमूने २-४ वर्ष तक रखने पड़ते हैं!

तम्बाकू के तीन मुख्य उपयोग हैं: खाने (chewing), पीने (smoking) तथा सूंघने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(snuffing) के लिए । बढ़िया-घटिया किस्म की तथा तीनों अलग-अलग उपयोग में आने वाली तम्बाकू के मिश्रण जिन खूबियों से बनाये जाते हैं वे व्यावसायिक गुर हैं । अतः वे सामान्य चर्चा के विषय नहीं हैं । मोटे तौर पर समझा जा सकता है कि पौधे के सिरे वाले पत्ते केवल खाने की तम्बाकू बनाने में काम आते हैं तथा नीचे की पत्तियाँ, पीने के लिए । उपरोक्त विधियों द्वारा तम्बाकू की पत्ती में जो विभिन्न रासायनिक परिवर्तन आ जाते हैं उनमें प्रमुख यह है कि निकोटीन (Nicotine) की मात्रा घटती जाती है । उदाहरणार्थ, सिगार-पाइप में पीनेवाली तम्बाकू बनाने के लिए पत्ती को काफी समय तक पकाना पड़ता है । फलस्वरूप उसकी पत्ती में निकोटीन की आधी मात्रा नष्ट हो जाती है । अतः वह पत्ती अन्य पत्तियों से कम हानिकारक होती है ।

तम्बाकू का उत्पादन इसके उत्पादक राष्ट्रों के लिये निर्यात-कर आदि टैक्सों द्वारा आय का सर्वश्रेष्ठ साधन है । विश्वभर में तम्बाकू का वार्षिक उत्पादन लगभग ८० करोड़ पौंड है, जिसमें प्रथम स्थान पर संयुक्त राष्ट्र अमरीका है । यह अपने उत्पादन का चौथा भाग निर्यात कर देता है । भारत और रूस का नम्बर इसके बाद आता है ।

धुआं तम्बाकू का, अथवा स्वास्थ्य का !

धूम्रपान के शौकीनों, प्रशंसकों और अभ्यस्त पियक्कड़ों का तर्क है कि इससे कोई प्रत्यक्ष बड़ी हानि नहीं होती, बल्कि मानसिक तनाव, उलझन, परेशानी और न जाने कैसे-कैसे सिर दर्द धुएँ के साथ ही बल खाते हुए दूर हो जाते हैं ! प्रसिद्ध इंगलिश लेखक ठेकरे (Thackeray) ने तो इसके पक्ष में यहाँ तक कहा है, 'पाइप तो वह जादू है जो दार्शनिक के ओठों से उसका ज्ञान भंडार निकलवा लेता है और बकवादी मूर्खों के ओठ बन्द किये रहता है ।' इस धूम्रपान के गुण-दोषों की चर्चा का यह स्थान भी नहीं है । केवल एक बात कहनी है कि

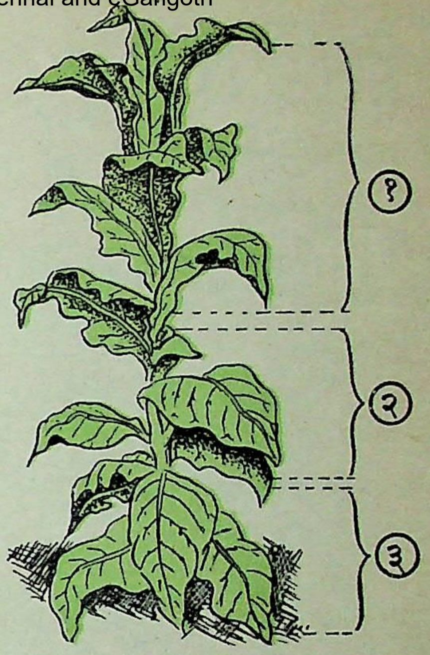

तम्बाकू के एक पौधे की पत्तियों के सामान्य तीन विभाग—**१. खाने के उत्तम मिश्रण के लिए, २. खाने के मध्यम मिश्रण के लिए, ३. पीने के मिश्रण के लिए**

तम्बाकू से निकला निकोटीन कितना जहरीला है यह समझने की आवश्यकता है । यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि निकोटीन एक अति तीव्र कीटाणुनाशक औषधि है और धूम्रपान के अतिरिक्त इसका उपयोग फसलों के कीटाणु नष्ट करने में भी व्यापक रूप से होता है । तम्बाकू की पत्ती से निकोटीन अलग करने के लिए पत्ती पर कास्टिक सोडा या चूने के घोल की प्रक्रिया करायी जाती है । क्रिया में निकोटीन उस घोल में घुला चला जाता है । बाद में उसे डिस्टिल करके अलग प्राप्त कर लेते हैं । इसका प्रयोग किसी भी पाउडर आदि में मिलाकर छिड़काव के रूप में करते हैं । अतः विशेषज्ञों का यह निष्कर्ष गलत नहीं कि अजीर्ण, क्षुधाहीनता, अनिद्रा, बदहजमी, धड़कन की वृद्धि, श्वास की कठिनाई, दृष्टि-दोष तथा अन्त में जिन-जिन भागों से धुआं गुजरता है उन भागों के किसी भी अंग में कैन्सर जैसे घातक रोग निकोटीन के ही आभारी हैं बल्कि उससे भी अधिक तो अपर्याप्त ज्ञान लिये हुए अंधाधुंध धूम्रपान किये जाने के आभारी हैं । ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारापुंज और नीहारिकाएं

जगदीशचन्द्र गोविल

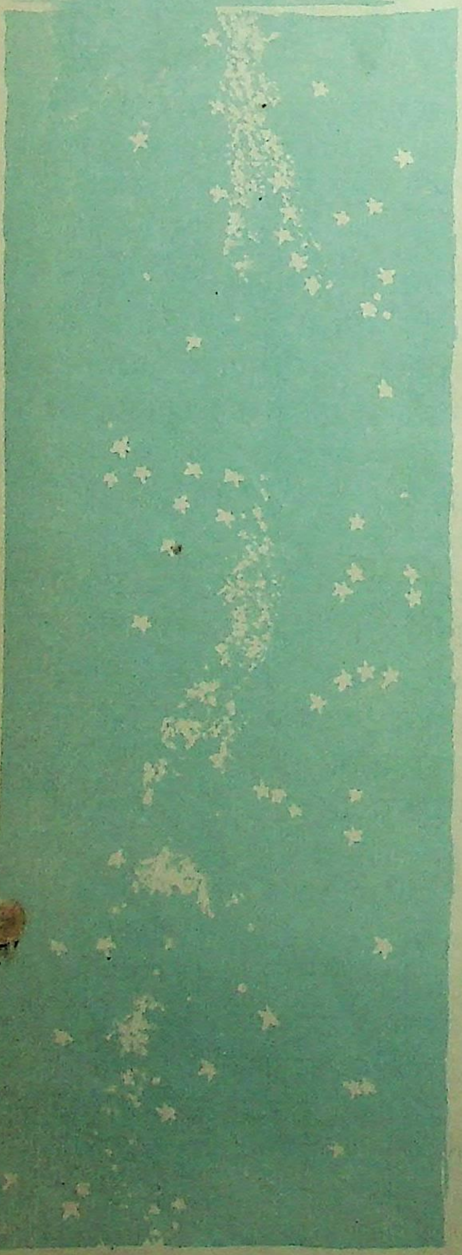

वर्षा के बाद जब वायुमण्डल की गर्द दूर हो चुकती है तब मेघरहित अँधेरी रात में दिखाई पड़नेवाले तारों की संख्या और उनकी जगमगाहट असाधारण तौर पर बढ़ी-चढ़ी होती है। साथ ही, क्षितिज के एक छोर से दूसरे छोर तक फैली आकाशगंगा के दूधिया मार्ग (Milky way) का भव्य स्वरूप भी निखर उठता है। आकाश में दूर-दूर तक छिटके हुए जगमग तारों तथा आकाशगंगा की निर्मल ज्योति के अतिरिक्त कहीं-कहीं अत्यन्त मन्द तारे जैसे हलके प्रकाश के धब्बे भी नजर आते हैं। कोरी आँखों से केवल पाँच-छः ही दिखाई पड़ते हैं सो भी महत्त्वहीन; किन्तु शक्तिशाली दूरदर्शी द्वारा देखे जाने पर उनकी संख्या काफी बढ़ जाती है। उनके भव्य स्वरूप और सौन्दर्य की अनुभूति भी तभी हो पाती है। दूरदर्शी-कैमरे द्वारा फोटो लेकर उनके विषय में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकी हैं।

कोरी आँखों से अत्यन्त मन्द तारे प्रतीत होनेवाले इन प्रकाश-बिन्दुओं को जब दूरदर्शी से देखते हैं तब इनमें कुछ तो हजारों तारों के झुंड से दिखाई पड़ते हैं जिन्हें 'तारापुंज' कहते हैं; और कुछ मन्द प्रकाश के हलके बादल की तरह दिखाई पड़ते हैं। उन्हें 'नीहारिका' कहते हैं। तारापुंज दो श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं। एक तो गेंद के आकार के होते हैं, जिनमें तारों की संख्या अत्यधिक होती है और वे एक दूसरे के इतने निकट होते हैं कि एक ही समुदाय के सदस्य प्रतीत होते हैं। उन्हें कंदुकाकार तारापुंज (gobular clusters) कहते हैं। दूसरे वे तारापुंज हैं जिनका कोई नियमित स्वरूप नहीं होता। उनमें तारों की संख्या १००-१५० से अधिक नहीं होती और अधिकांश तारे कुछ दूर-दूर बिखरे भी रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। वे खुले तारापुंज (open clusters) कहलाते हैं।

इन तारापुंज के तारों की दूरी तथा गति लगभग समान ही होती है। इससे पता चलता है कि वे एक ही समुदाय के सदस्य हैं। अनुमान है कि किसी भी खुले तारापुंज के तारे प्रारम्भ में गैसों तथा धूल-कणों से बने किसी एक बादल के सिमटने के कारण बने होंगे। अब तक आकाश में लगभग दो सौ खुले तारापुंज देखे जा चुके हैं। वृष (Taurus) तारा-समूह में 'कृत्तिका' नामक एक सुन्दर खुला तारापुंज प्लीयुडीज (Pleiades) आसानी से देखा जा सकता है। कोरी आँखों से इस तारापुंज में केवल एक ही दर्जन तारे दिखाई देते हैं किन्तु वास्तव में इसमें लगभग डेढ़-सौ तारे हैं। उनमें कुछ तो इतने किच-पिच दिखाई पड़ते हैं कि इस तारापुंज का नाम ही 'किचपिचिया-पुंज' पड़ गया है। कर्क (Cancer) तारा-समूह का 'चषाल' (Praesepe) तारापुंज मधु-मक्खियों के छत्ते जैसा प्रतीत होने वाला खुला तारापुंज है।

वैसे तो खुले तारापुंज अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं, किन्तु हाल ही में अमरीका के ज्योतिर्विद आर. जे. ट्रेम्पलर ने कुछ तारापुंजों की दूरी तथा व्यास की गणना के पश्चात् घोषित किया है कि आकाशगंगा में दूरस्थ तारों के बीच ऐसे धूल-कण मौजूद हैं जो तारों से आनेवाले प्रकाश का शोषण कर लेते हैं। अनुसन्धान की दृष्टि से खुले तारापुंजों की अपेक्षा कंदुकाकार तारापुंज कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें बहुत बड़ी संख्या में तारे इतने पास-पास स्थित होते हैं कि पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण के कारण वे कंदुक के आकार में बने रहते हैं। उन तारापुंजों की एक विशेषता यह है कि बनावट तथा आकार में वे एक-से होते हैं और उनके केन्द्र से बाहर की ओर तारक-सघनता (star density) क्रमपूर्वक घटती जाती है। दूसरी विशेषता यह है कि प्राय: सभी कंदुकाकार तारापुंजों के अन्दर अथवा उनके समीप

आकाश-गंगा का एक दुर्लभ दृश्य

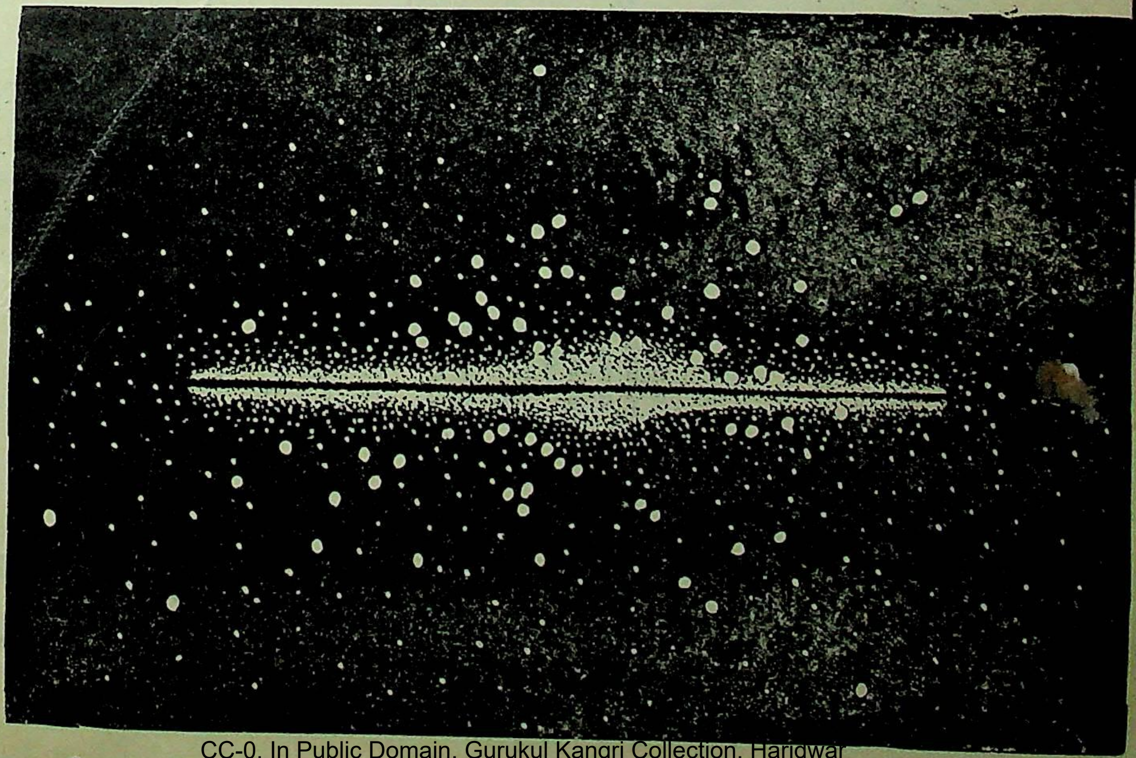

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मुझे मेरी
जन्म-भूमि की
याद दिलाती है!

सुन्दरता और
सावधानी से मिश्रित

जब अतिथि आयें
सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुत कीजिए

प्रस्तुत कीजिये

हाईलैंड चीफ

माल्टेड ह्विस्की

ायर मीकिन ब्रूअरीज़ लि० स्थापित १८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

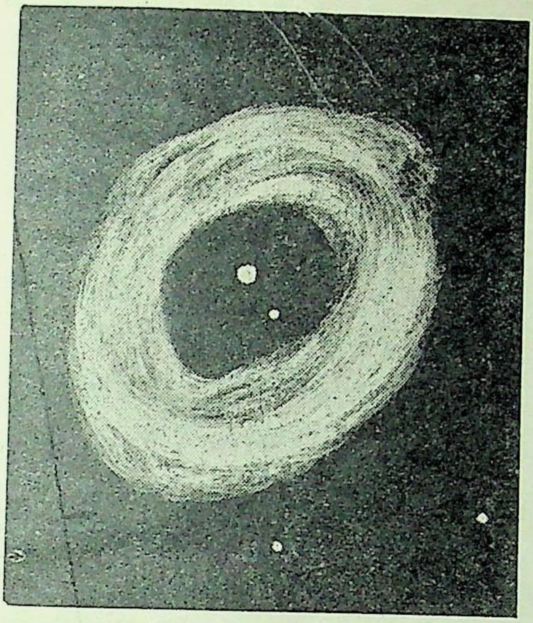

वीणा (Lyre) **तारासमूह की वृत्ताकार नीहारिका**

लघुकालिक (short period) परिवर्ती तारे (Cepheid) मौजूद होते हैं। उन परिवर्ती तारों की चमक के नियमित रूप से घटने-बढ़ने के चक्र को ज्ञात करके तारापुंजों की सही दूरी ज्ञात की जा सकी है। गणनाओं से पता चलता है कि निकटतम कंदुकाकार तारापुंज लगभग अठारह हजार प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है तथा दूरतम तारापुंज उससे लगभग तेरह गुनी दूरी पर है। इन तारा पुंजों का भार सूर्य के भार से लाखों गुना अधिक होता है। इनसे विकीरित प्रकाश भी सूर्य के प्रकाश से कई लाख गुना अधिक होता है।

हमारी आकाशगंगा की बनावट फूले हुए मालपूए जैसी है—बीच में मोटी तथा हाशिए पर पतली। कंदुकाकार तारापुंजों की दूरियाँ ज्ञात करने पर एक असाधारण बात यह पाई गई कि अधिकांश तारापुंज आकाशगंगा के फूले हुए भाग के भीतर और उसके बाहर फैले हुए हैं। इसी कारण ये तारापुंज सूर्य के एक ओर, आकाश के अर्द्ध भाग में ही अधिक दिखाई पड़ते हैं। लम्बाई-चौड़ाई में तो ये हमारी आकाशगंगा के समान ही फैले हुए हैं, किन्तु मोटाई में इनका विस्तार कहीं अधिक है। सच तो यह है कि ये कंदुकाकार तारापुंज ही ब्रह्माण्ड में हमारी आकाशगंगा के आकार-प्रकार की सीमाएँ निर्धारित करते हैं।

शौरी (Hercules) तारा-समूह में, २ लाख ३० हजार प्रकाश वर्ष दूर, एक विराट कंदुकाकार तारापुंज है। फ्रांस के ज्योतिर्विद् मैसियर की सूची के अनुसार इसका नम्बर M-13 है। इस तारापुंज में पचास हजार से भी अधिक तारे हैं। उनमें से अनेक तारे सूर्य से कहीं अधिक चमकीले हैं।

नीहारिकाएँ

नीहारिकाओं को नेब्युली (*Nebulae*) कहते हैं। नेब्युली लैटिन शब्द है जिसका अर्थ है 'बादल'। नीहारिकाएँ दीखती भी गैसों तथा धूल-कणों के बादल जैसी ही हैं। ये प्रायः अत्यन्त ही मन्द प्रकाश की होती हैं। इस कारण इनका विस्तृत अध्ययन सामान्य दूरदर्शी द्वारा सम्भव ही नहीं। सूक्ष्मग्राही दूरदर्शी-कैमरे की फोटो प्लेट को अधिक समय तक खुली रखे रहकर, प्रकाश-

शौरी (Hercules) **तारा-समूह में विराट कंदुकाकार तारापुंज** M–13

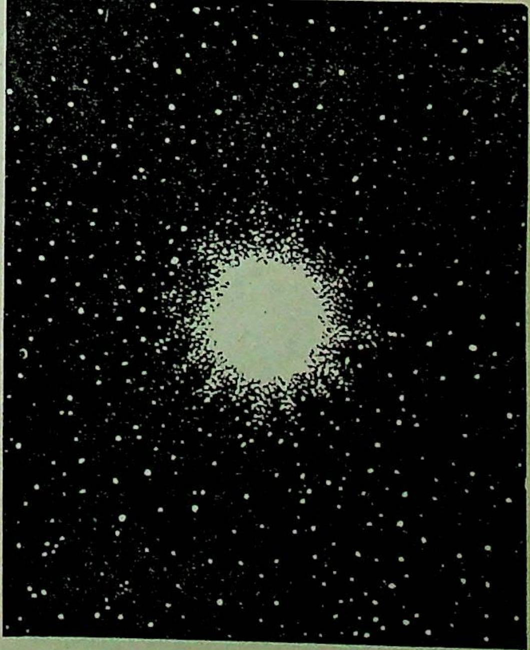

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन (expose) करा कर ही इनके फोटो लेना सम्भव है।

नीहारिकाएँ दो वर्गों में बाँटी जा सकती हैं : एक, जो हमारी आकाशगंगा में स्थित हैं तथा दूसरी जो बाहर स्थित हैं। अध्ययन से पता चला है कि स्थानीय नीहारिकाएँ केवल गैसों और धूल-कणों से बनी हुई हैं। इसके विपरीत दूरस्थ नीहारिकाएँ करोड़ों तारों के समुदाय हैं। उनमें ऐसे भी पदार्थ हैं जो तारों में परिणत होने की तैयारी में हैं। इस कारण बाहर की नीहारिकाएँ जिन्हें भ्रमवश नीहारिका माना जाता था, वास्तव में नीहारिकाएँ हैं ही नहीं। वे तो आकाशगंगा के समान ही स्वतन्त्र आकाशगंगाएँ हैं जो विश्व के असीम विस्तार में दूर-दूर तक फैली हैं और हमसे बहुत दूर होने के कारण ही नीहारिकाएँ लगती हैं। अन्य आकाशगंगाओं से देखे जाने पर हमारी आकाशगंगा भी एक नीहारिका ही लगेगी।

हमारी आकाशगंगा में स्थित नीहारिकाओं में से कुछ का रूप नियमित होता है तथा कुछ का अनियमित। नियमित रूप वाली नीहारिकाएँ सदैव वृत्ताकार होती हैं। उन्हें प्लेनेटरी नेब्युली (Planetary Nebulae) कहते हैं। नियमत: उनके केन्द्र पर मन्द प्रकाश का एक तारा होना आवश्यक है। उसी के चारों ओर वे घूमती जो हैं! इस प्रकार की नीहारिकाएँ अत्यन्त ही विरल—लगभग वैकुअम के समान—चमकीली गैसों की बनी होती हैं। आकाश में ऐसी नीहारिकाएँ लगभग डेढ़ सौ से भी अधिक हैं। वीणा (Lyra) तारा-समूह में M-57 नामक विख्यात वृत्ताकार नीहारिका है।

अनियमित नीहारिकाओं को 'डिफ्यूज नेब्युली' (Diffuse Nebulae) कहते हैं। आकार में ये काफी बड़ी होती हैं। इनका कोई नियमित रूप भी नहीं होता। इनमें कुछ ऐसी भी होती हैं जिनके अन्दर अथवा समीप कुछ चमकदार तारे होते हैं। उन्हीं तारों से विकीरित होनेवाले प्रकाश तथा ऊर्जा के कारण ये नीहारिकाएँ प्रकाशमान दीखती हैं। इन्हें श्वेत नीहारिकाएँ भी कहते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और नीहारिकाएँ ऐसी हैं जिन्हें प्रकाश देने के लिए कोई भी तारा नहीं होता। वे काली नीहारिकाएँ कहलाती हैं। कुछ अन्य नीहारिकाएँ ऐसी भी होती हैं जिनका कुछ ही भाग प्रकाशमान होता है, शेष भाग काला रहता है। अनियमित नीहारिकाएँ ठंडी गैसों तथा अति सूक्ष्म धूल-कणों के बादलों से निर्मित होती हैं। ये विस्तार में बहुत बड़ी होती हैं, किन्तु भार में अपेक्षाकृत हलकी होती हैं। इनके आकार का

मृग (Orion) तारासमूह में विराट, काली नीहारिका-घोड़े के सिर की आकृतियुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि बहुत ही कम घनत्व होने पर भी इनका भार सूर्य की तुलना में दसवें भाग से लेकर हजारों गुना अधिक तक होता है।

कुछ श्वेत नीहारिकाएँ अत्यन्त विशालकाय और विशेष प्रकाशमान होती हैं। मृग (Orion) तारा-समूह में M-42 नाम की श्वेत-नीहारिका दूरदर्शी में बहुत ही सुन्दर दीख पड़ती है। इसका भार सूर्य से दस हजार गुना अधिक है। इसमें घोड़े के सिर (Horse Head) जैसी दीखनेवाली एक काली नीहारिका भी है। हंस तारा-समूह में दुपट्टे जैसी आकृति की 'ब्राइडल वेल' (Bridal Veil) तथा 'धनु' तारा-समूह में 'घोड़े की नाल' (Horse Shoe) नाम की श्वेत नीहारिकाएँ हैं। काली नीहारिकाएँ आकाश में प्राय: वहीं दिखलाई पड़ती हैं जहाँ तारे काफी घने हैं। ये नीहारिकाएँ उनके सामने आ जाती हैं तब उनके प्रकाश को अंशतः ढाँप लेती हैं। हमारी आकाशगंगा के दूधिया मार्ग में 'कोयले की बोरी' (Coal-Sack) नामक एक बहुत बड़ी और घनी काली नीहारिका है।

हमारी आकाशगंगा के बाहरवाली नीहारिकाएँ वास्तव में तारों की मन्दाकिनी-संस्थाएँ ही हैं। ये प्राय: नियमित रूप की होती हैं। इनमें से कुछ गोल (globular), कुछ चपटी (elliptical) तथा कुछ कुंडल (spiral) आकार की हैं। कुंडल आकार की सबसे निकट नीहारिका 'देवयानी' (Andromeda galaxy) है। साधारण दूरदर्शी में यह चपटी प्रतीत होती है, किन्तु शक्तिशाली दूरदर्शी में यह स्पष्ट कुंडलाकार दिखाई पड़ती है। देवयानी में स्थित परिवर्त्ती तारों के अध्ययन द्वारा पता चला है कि देवयानी की दूरी १५ लाख प्रकाश-वर्ष की है। ये आकाशगंगाएँ आकार-प्रकार में हमारी आकाशगंगा के ही समान हैं। यह इतनी सुन्दर है कि इसे 'नीहारिकाओं की रानी' कहा जाता है। दूरी में देवयानी के बाद 'त्रिकोण' (Triangulum) नामक आकाशगंगा का नम्बर आता है जो १५ लाख ६० हजार प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। आधुनिकतम पर्यवेक्षण के अनुसार सबसे दूरवर्ती आकाशगंगा हमसे लगभग दो अरब प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। सम्भव है, इससे भी अधिक दूरी पर स्थित किन्हीं आकाशगंगाओं का पता भविष्य में लग सके! ●

सर्पिल आकार की एक नीहारिका, चारों ओर गैसों के बादल तथा तारे छिटकाती हुई

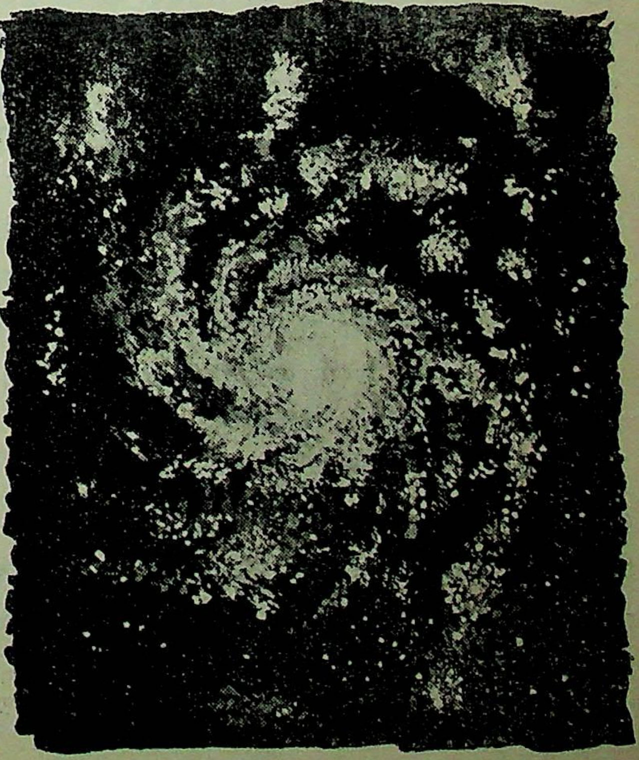

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

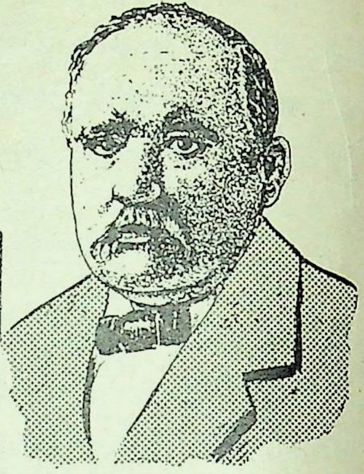

आरहीनियस

सत्यकुमार

बात तब की है जब विज्ञान-जगत् में विद्युत के प्रवेश से तहलका मचा हुआ था। रसायनशास्त्रियों के सम्मुख विद्युत की चकाचौंध ने कितने ही प्रश्नचिह्न खड़े कर दिये थे। रसायनशास्त्र की कितनी ही गुत्थियाँ सुलझने के लिये सैद्धान्तिक आधार की प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्हीं दिनों परिश्रमी युवक आरहीनियस ने उन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप भौतिक रसायन की स्थापना की जा सकी। स्वीडन का वह पहला व्यक्ति था जिसे नोबुल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

स्वीडन के विज्क नामक गाँव में १९ फरवरी, १८५९ को आरहीनियस का जन्म हुआ था। तीन वर्ष की अवस्था से उसने पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। वह कुशाग्र-बुद्धि था और शैशव से ही प्रकृति के रहस्य जानने की जिज्ञासा उसमें कूट-कूटकर भरी थी। गाँव की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर लेने के बाद उसने उप्सला विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। गणित और विज्ञान उसके प्रिय विषय थे। आगे चलकर उसने रसायन-शास्त्र का भी विशेष अध्ययन किया।

आरहीनियस आयनीकरण - सिद्धान्त (Theory of Ionisation) के लिये प्रसिद्ध है। यह विषय उसने अपने डाक्टरेट में अनुसंधान के लिये चुना था। किसी पदार्थ के विलयन में विद्युत प्रवाहित करने से क्या क्रिया होती है, यह तब तक स्पष्ट नहीं था। आरहीनियस से पूर्व अनेक वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किए थे परन्तु वे सन्तोषजनक नहीं थे। आरहीनियस भी इसी समस्या का हल खोजने में जुट गया। उसके लिए न दिन रहा, न रात; न समय पर भोजन, न विश्राम। बस, विलयन, विलयन और विलयन ! भिन्न-भिन्न रंग और सान्द्रता के। तोलना, नापना और उनमें विद्युत प्रवाहित करना। दो वर्ष तक यही क्रम रहा। यह उसका सौभाग्य था कि उसने तनु (dilute) विलयन बनाये थे। उससे पूर्व सान्द्र (concentrated) विलयनों पर ही प्रयोग करते रहनेवाले असफल हो चुके थे। १७ मई, १८८३ को सारी रात जाग कर आरहीनियस ने कुछ तो निष्कर्ष निकाल ही लिया।

आज तो आयनीकरण-सिद्धान्त सर्व-विदित है। जब किसी विद्युत-विच्छेद्य (electrolyte) को पानी अथवा अन्य किसी उपयुक्त द्रव में घोला जाता है तो वह दो प्रकार के कणों में बँट जाता है। उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कणों को आयन (ions) कहते हैं। ये कण धन अथवा ऋण विद्युत से आवेशित होते हैं और किसी भी विलयन में इन दोनों की संख्या समान होती है। विद्युत-विच्छेद्य पदार्थ के अणु विघटित होकर आयन बनाते हैं और विपरीत प्रकृति के आयन एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होकर उदासीन अणु बनाते हैं। इस प्रकार एक गतिशील सन्तुलन बन जाता है। आयनीकरण की मात्रा मुख्यतः विलयन की तनुता, ताप और विद्युत-विच्छेद्य की प्रकृति पर निर्भर करती है।

यह आयनीकरण रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान तथा वैश्लेषिक विज्ञान में बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। इस तथ्य को वैज्ञानिक जगत ने बड़ी मुश्किल से अपनाया था। डाक्टरेट के लिये अपनी थीसिस में आरहीनियस को उस समय प्रचलित कुछ गलत मान्यताओं का जान-बूझकर सहारा लेना पड़ा था, अन्यथा कट्टरपंथी परीक्षक उसे डिग्री देते ही नहीं! बड़ा एहसान जताकर उसे डिग्री दी गयी और उसके खोजपूर्ण निबन्ध की जरा भी सराहना नहीं की गई। आयनीकरण के सिद्धान्त की स्थापना के लिये आरहीनियस ने भरपूर प्रयत्न किया। उसने अपने एक अध्यापक क्लीव से इस सम्बन्ध में परामर्श लिया। क्लीव उस समय के प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। होलमियम और थूलियम नाम के दो तत्त्वों की खोज का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। आरहीनियस के कार्य में उन्होंने कुछ रुचि नहीं ली। एक अन्य वैज्ञानिक ने भी ३० वर्ष पूर्व इसी प्रकार का कुछ कार्य किया था। आरहीनियस ने उसे भी लिखा पर कोई उत्तर नहीं मिला। रुचि तो दूर, लोग इस सिद्धान्त का ही विरोध करते थे। प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक मेण्डलीफ भी, जिनके प्रति विज्ञान-जगत आवर्त-तालिका के लिये कृतज्ञ है, इस सिद्धान्त के कट्टर विरोधी थे। बाद में ओसवाल्ड, कोलरोश व वांटहाफ नामक वैज्ञानिकों के अथक प्रयत्नों से इस सिद्धान्त की रसायन-जगत में स्थापना हो सकी। रसायन पर ओसवाल्ड की अपनी पत्रिका थी और उसके पास दूर-दूर से विद्यार्थी पढ़ने आते थे। इन दोनों माध्यमों से उसने आरहीनियस के सिद्धान्तों का धुआंधार प्रचार किया। ओसवाल्ड के ६०वें जन्म-दिवस पर अपने संस्मरणों की From My Youth नामक पुस्तक उसे समर्पित करके आरहीनियस ने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी।

स्टाकहोम विश्वविद्यालय में प्रोफेसर का पद पाने के लिये भी आरहीनियस को संघर्ष करना पड़ा था। उसके देशवासी उसकी विद्वत्ता से प्रभावित नहीं थे और प्रमुख वैज्ञानिकों को उसके क्रान्तिकारी सिद्धान्तों पर आस्था नहीं थी। आयन जैसी वस्तु जो दिखाई न पड़े, जिसका कोई भौतिक प्रमाण न दिया जा सके, उसे उस समय के वैज्ञानिक स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। आरहीनियस की नियुक्ति के लिये दो बार जाँच-आयोग की नियुक्ति हुई। यदि जर्मनी की बुन्सन सोसाइटी ने आरहीनियस को सम्मानित न किया होता तो सम्भवतः उसे यह पद प्राप्त न हुआ होता। आखिर हारकर उसके देशवासियों को भी उदारता दिखानी पड़ी।

आरहीनियस ने उस पद पर अभूतपूर्व क्षमता से अनुसंधान कार्य किया। फलस्वरूप दो वर्ष में ही उसकी उन्नति अध्यक्ष के पद पर हो गई। लन्दन की रॉयल सोसायटी ने उसे 'डेवी मेडल' से पुरस्कृत किया। १९०३ में उसे नोबुल पुरस्कार प्रदान किया गया। १९०४ में उसने अमरीका की यात्रा की और रसायनशास्त्र के सिद्धान्तों पर भाषण दिए। अमरीकन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केमिकल सोसायटी ने उसे 'विलार्ड गिब्स मेडल' से सम्मानित किया। १९०५ में उसे स्वीडन के सम्राट ने नोबुल इंस्टीट्यूट में भौतिक रसायन का प्रथम डाइरेक्टर नियुक्त किया। इस पद पर वह १९२७ तक रहा। केम्ब्रिज तथा ग्राक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों ने भी उसे सम्मानार्थ डाक्टरेट प्रदान किए। १९११ में उसने दूसरी बार ग्रमरीका की यात्रा की। इस बार उसने विलयनों के सिद्धान्त पर भाषण दिए।

ग्रारहीनियस का पारिवारिक जीवन सुखी था। वह प्रयोगशाला में भी उतना ही प्रसन्न रहता था जितना परिवार में। उसका पहला विवाह सोफिया रडनेक से १८९४ में हुग्रा था। उसके स्वर्गवास के पश्चात् दूसरा विवाह १९०५ में मेरिया जोग्रानसन से हुग्रा। पहली पत्नी से एक पुत्र व दूसरी से एक पुत्र व दो पुत्रियों का जन्म हुग्रा।

ग्रारहीनियस कई भाषाग्रों का ज्ञाता था। उसने ग्रनेक पुस्तकें व ग्रनुसंधान-पत्र जर्मन, ग्रंग्रेजी, फ्रेंच व स्वीडिश में लिखे। उसकी कई पुस्तकों के ग्रनेक संस्करण उसके जीवन काल में ही प्रकाशित हो चुके थे। उसकी सभी पुस्तकें रसायनशास्त्र से सम्बन्धित नहीं हैं। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उसने विज्ञान के ग्रनेक पहलुग्रों का सफल ग्रध्ययन किया था। उसकी कुछ पुस्तकों के नाम हैं: 'वर्ल्ड्स इन दी मेकिंग' 'लाइफ ग्राफ दी यूनिवर्स', 'डेस्टिनी ग्राफ दी स्टार्स' 'इम्यूनो-केमिस्ट्री', स्मालपाक्स एपिडेमिक' इत्यादि। उसकी ग्रन्तिम पुस्तक रसायनशास्त्र की 'केमिस्ट्री इन माडर्न लाइफ' १९२५ में प्रकाशित हुई। उसकी पुस्तकों की भाषा बहुत सरल व भाव बहुत स्पष्ट हैं। जन-साधारण भी उस भाषा को समझकर विषय में रस ले सकता है।

जनसेवा के कार्यों में भी ग्रारहीनियस सदा ग्रागे रहता था। प्रथम विश्व-युद्ध में बन्दी वैज्ञानिकों की मुक्ति के लिए उसने ग्रथक प्रयत्न किए।

१९२७ में उसने डाइरेक्टर के पद से ग्रवकाश ग्रहण कर लिया। तब उसके देश-वासियों ने दिल खोलकर उसका सम्मान किया। उसके लिये ग्रच्छी पेंशन भी निश्चित कर दी। ग्रन्तिम दिनों में उसके भाग्य में विश्राम नहीं लिखा था। २ ग्रक्टूबर, १९२७ को वह ग्रनन्त पथ की ग्रोर चल पड़ा। ●

जल्दबाजों का अस्पताल

कभी-कभी बच्चे भी बड़ी बेतुकी जल्दबाजी कर जाते हैं, ऐसी कि पूरे नौ महीने से पहले, आठवें, सातवें या छठवें महीने में ही आ जाना चाहते हैं! ऐसे बच्चों का एक अनूठा अस्पताल पश्चिम जर्मनी के मेइन्ज नगर में दस लाख मुद्राओं के खर्चे से बनाया गया है। बस, किसी भी जल्दबाज बच्चे के होने की खबर मिलने दीजिए, नर्स और उष्मक-कला युक्त एम्बुलैन्स दरवाजे पर पहुँच जायगी और पूरी सावधानी से बच्चे को ले आयेगी। प्रकृति के नियमानुसार नौ महीने पूरे होने तक के शेष दिन उस बच्चे को उक्त अस्पताल में शीशे के कक्ष में बिताने पड़ते हैं। उसके चारों ओर सर्वथा कीटाणु रहित तथा शुद्ध वातावरण इतनी सख्ती से रखा जाता है कि डाक्टर और नर्स भी बगैर आवश्यक शुद्धि के प्रवेश नहीं कर सकते। बच्चे के माँ-बाप को तो बाहर ही से शीशे में झाँककर तसल्ली कर लेनी पड़ती है। बच्चे को आवश्यक पोषण तथा श्वसन एवं अन्य क्रियाएं यन्त्रों द्वारा सम्पन्न करायी जाती हैं। नौ महीने पूरे होने पर जब बच्चा पहली बार सूरज की रोशनी में आँख खोलता है तब अभिनन्दन सहित उसे उसके माँ-बाप को सौंप दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये पुराने, पुराने नये होते हैं

पुस्तकालय 040150 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

कुमारी सरला

कपड़े आप बदलते हैं, पेड़-पौधे बदलते हैं (नयी पत्तियों के रूप में) तो जीव-जन्तु भी बदलते हैं। हम और आप तो केवल शोभा के लिये बदलते हैं, किन्तु पेड़-पौधे और जीव-जन्तु तो शोभा से कहीं अधिक अपनी वृद्धि तथा विकास के लिए बदलते हैं। जीव-जन्तुओं में इसका एक अतिरिक्त प्रयोजन और भी है। वह है, शत्रु से बच निकलना। समय-समय पर अपना केंचुल बदलना ही इनके लिए कपड़े बदलना है। शत्रु द्वारा हाथ, पांव, पूंछ, चाहे कुछ भी पकड़े जाने पर तो ये यों भाग खड़े होते हैं मानो ट्रेन का डब्बा ही अलग हो गया हो! पकड़ा हुआ अंग अलग और ये अलग! उस टूटे हुए अंग का इन्हें दुःख भी नहीं होता, क्योंकि शीघ्र ही समय पाकर वह अंग नया उग आता है। केकड़े, छिपकली तथा सर्प जाति के जन्तुओं में यह प्रवृत्ति अधिकतर पायी जाती है।

मकड़ी

मकड़ी अपने आठों पांवों से चाहे जहाँ फुदकती फिरती है। वे लम्बे पांव ही इसे कभी-कभी संकट में डाल देते हैं। उस संकट से बच निकलना भी यह खूब जानती है। जहाँ शत्रु ने इसका पांव लपका, यह उस पाँव को ही छोड़कर भाग निकलती है। बेचारे शत्रु के पल्ले रह जाता है केवल पांव—वह टूटा पांव! जल्द ही उस जगह नया पांव उभरना शुरू हो जाता है। बाहर निकलने और बढ़ने के लिए केंचुल बदलने तक ठहरना पड़ता है। केंचुल बदलने की क्रिया बड़ी कष्टप्रद और श्रमसाध्य है। इन प्राणियों को केंचुल बदलने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि ऊपर का खोल अवस्था के अनुसार बढ़ते-फैलते शरीर का साथ नहीं दे पाता और प्राणी का दम घोंटता तथा भींचता रहता है। अतः बार-बार केंचुल बदलना आवश्यक हो जाता है। मकड़ी को तो शिशु-अवस्था से पूर्णतः विकसित होने तक ८-९ बार पुराना चोला बदलकर नया धारण करना पड़ता है। इस क्रिया के लिए मकड़ी अपने ही काते हुए एक मजबूत धागे के सहारे उलटी लटक जाती है और आठों पांवों को सिकोड़कर जोर लगाती है। कई बार जोर लगने के बाद पीठ की ओर से खोल चटखने लगता है। तभी मकड़ी अपने सिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I........Price : 80 nP.
Book II........Price : Re.1·00
Book III........Price : Re.1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.

Educational Publishers, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

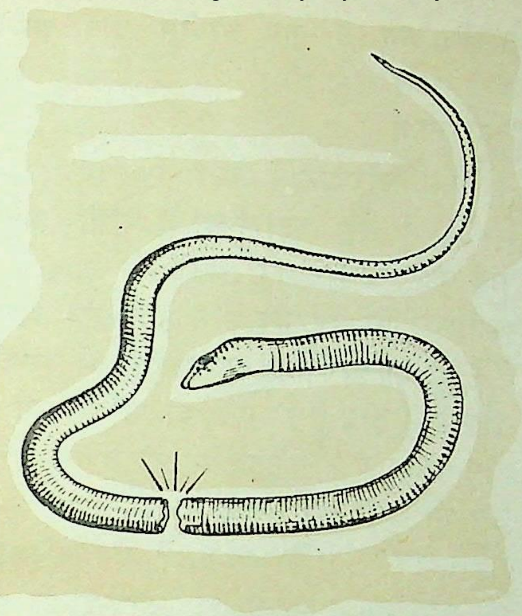

छिपकली परिवार का यह ग्लास स्नेक वास्तव में छिपकली ही है । इसकी पूँछ क्या है, शीशे की छड़ है जो तड़ से टूटना जानती है तो समय पाकर जुड़ना भी !

से लेकर शरीर के हर अंग को बारी-बारी से निकालना शुरू करती है । पांवों का नम्बर आने पर बेचारी की मुसीबत आ जाती है । एक-एक पतली टाँग को तंग फुँकनी जैसे खोल से निकालना सहज नहीं होता । कभी-कभी तो ५००-६०० तक झटके लगाने पड़ते हैं !

ग्लास स्नेक

छिपकली परिवार का यह प्राणी मेक्सिको तथा एरिजोना प्रदेशों में पाया जाता है । इसके हाथ-पांव नजर नहीं आते तथा यह चार फुट तक लम्बा पाया जाता है; इसीलिए इसे स्नेक अर्थात् सर्प कहा जाता है । ग्लास-स्नेक इसलिए कहते हैं कि मौका पड़ने पर इसकी पूँछ शीशे की तरह चटखकर टूट जाती है और समय पाकर पुनः जुड़ भी जाती है । इसी परिवार में गिला मान्स्टर (Gila Monster) भी है । चमकीली लाल चित्तियोंयुक्त इसका शरीर दूर से ही नजर आ जाता है । इसकी पूँछ इसके लिये भोजन-भण्डार का काम देती है । भरपेट खा लेने के बाद भी काफी भोजन इसमें जमा कर लेने के कारण यह फूलकर कुप्पा हो जाती है । इसलिए जल्द-जल्द भोजन तलाश करने की जरूरत नहीं पड़ती । आक्रमणकारी प्राणी भी इससे बचकर ही चलते हैं; क्योंकि इसकी चपेट में आ जाने पर उन्हें छुटकारा नहीं मिल पाता ।

छिपकली

इसके पांव तो काफी छोटे होते हैं लेकिन पूँछ लम्बी और नाजुक होती है । आक्रमणकारी पहले पूंछ को ही धर दबाता है । तुरन्त ही यह अपनी पूँछ को यों झटक देती है मानो काटकर ही फेंक दी हो ! जब तक शत्रु इसकी छटपटाती पूँछ का तमाशा देखता रह जाता है, यह साफ बच निकलती है । पूँछ की कीमत पर जान बचा ले जाने का सौदा इसे महंगा नहीं पड़ता । कुछ दिनों बाद नयी पूँछ उग आती है । कई छिपकलियाँ तो पूँछ दबोचने का मौका ही नहीं देतीं और मारे डर के या शत्रु को उल्लू बनाने के लिए पहले ही अपनी पूँछ उसकी भेंट चढ़ा देती

छिपकली-परिवार का यह गिला मान्स्टर इस समय ठूँस-ठूँस कर खाये हुए आराम से पड़ा है । पंछ में काफी भोजन जमा भी कर लिया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

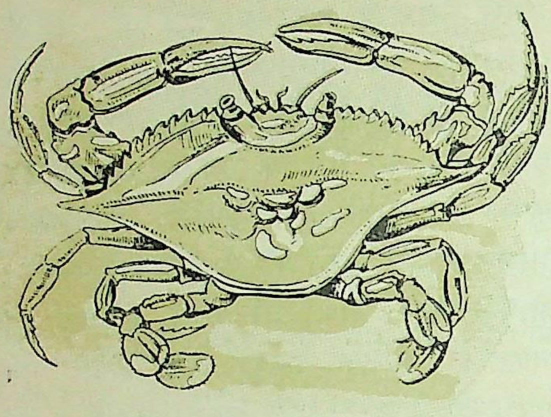

इन केकड़ा महाशय की तो बस, कुछ न पूछिये। टेढ़े-मेढ़े अंगों की कोई गिनती नहीं। खूबी यह कि जरा कोई टूटा-फूटा कि नया तैयार !

हैं। कभी-कभी तो नयी पूँछ इस तेजी से उग आती है कि पुरानी पूँछ तब तक पूरी नहीं झड़ पाती। इसलिए अक्सर दो-दो पूँछवाली छिपकलियाँ भी देखने में आती हैं।

केकड़ा (Crab) और झींगा (Lobster)

ये घोंघे की तरह शंख जैसे अपने चारों ओर सख्त खोल लिए हुए पैदा होते हैं। जल्द ही शरीर बढ़ने के साथ-साथ उस तंग खोल में बड़ी घुटन महसूस करते हैं। जहाँ कहीं भी खोल में जरा सी दरार नजर आई कि जोर लगाकर थोड़ी और चटखा देते हैं और धीरे-धीरे बाहर निकल आते हैं। बाहर आकर भी कैद से वह छुटकारा इनके लिए सुखदायी नहीं होता। अतः जल्द ही नया खोल ओढ़ लेना पड़ता है। बगैर खोल न तो एक कदम चल सकते हैं, न तैर सकते हैं और न खा-पी सकते हैं। नया खोल कुछ ही घंटों में तैयार हो जाता है। झींगा, आमिष-आहार का एक प्रिय व्यंजन भी है लेकिन इसे तभी लिया जाता है जब कि यह नौ वर्ष का हो चुका हो और कम से कम चौबीस बार अपने कपड़े बदल चुका हो।

स्टारफिश

इसी परिवार में ब्रिटल फिश (Brittle fiish) भी है। स्टारफिश के पांचों हाथ-पांव एक सितारे की शक्ल में होते हैं। इसीलिए इसे उपरोक्त नाम से पुकारा जाता है। टूटे हुए अंग नए उपजा लेने की इसकी गति बड़ी तीव्र है। एक, दो या तीन-तीन हाथ-पांव एक साथ टूटने पर फौरन एक साथ उग भी आते हैं। लाल सागर तथा हिन्द महासागर में पायी जानेवाली इस परिवार की मछलियाँ तो टूटे हुए हाथ-पांवों की जगह समूची नयी मछलियाँ ही पैदा कर लेती हैं। ऐसी विलक्षण मछलियों को लिंकिंग (Linking) भी कहते हैं। काले, भूरे और नीले रंगों में ये ऐसी चटकीली होती हैं कि जिन मूंगे की चट्टानों पर विचरती हैं, उसी की झलक में घुल-मिल जाती हैं। इनके पुराने टूटे अंगों से उपजती हुई नयी मछली का नन्हा सिर ऐसे मालूम

यह है स्टारफिश, कोई भी अंग टूटने की देर नहीं, कि नया तैयार !

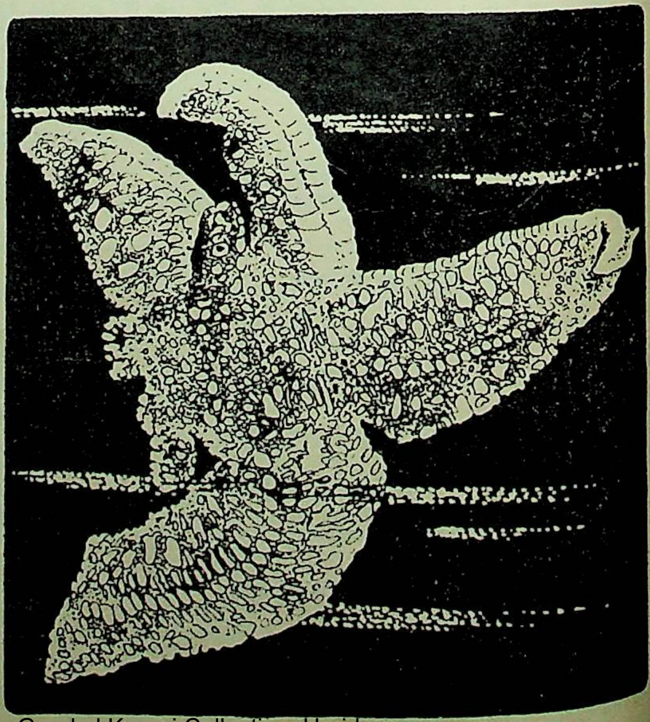

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

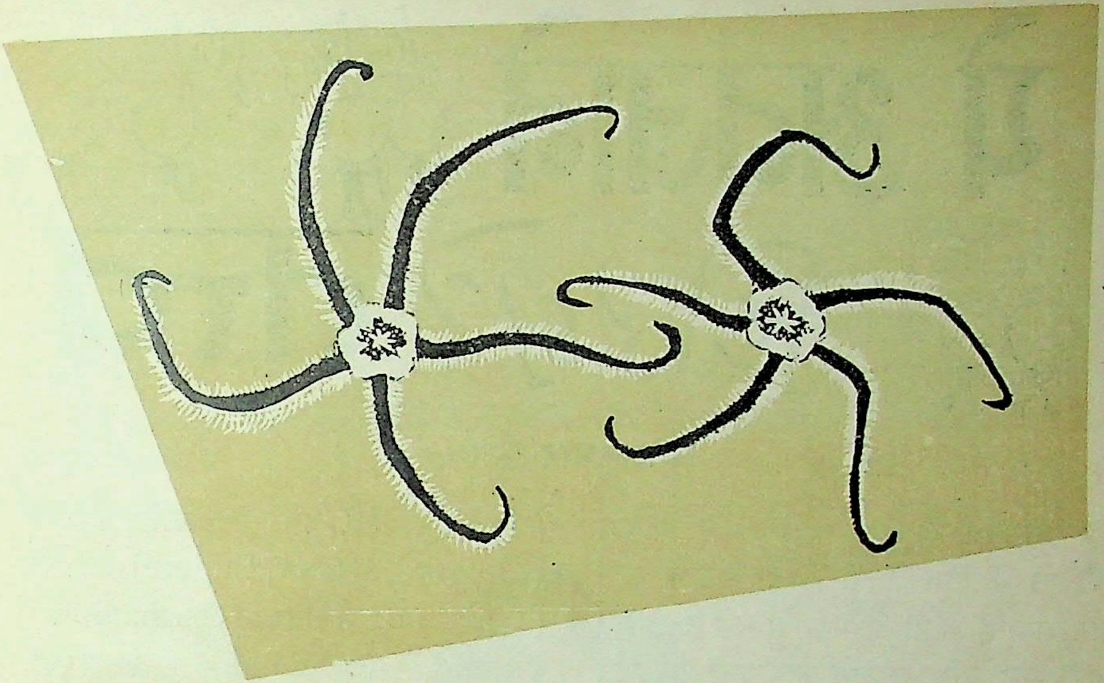

ये ब्रिटलफिश भी स्टारफिश की सहेलियाँ हैं । प्रत्येक टूटा अंग एक स्वतन्त्र मछली ही बन जाता है

होता है जैसे कोई पुच्छल-तारा पानी में तैर रहा हो ।

गिरगिट (शेमलियन)

यह रंग और रंगत बदलने में इतना बदनाम है कि धोखाधड़ी की उपमा के लिए इसकी समानता दी जाती है। यह एक अभिनेता की शान से कपड़े बदलता है। जरूरत हुई वहाँ चोला बदल लिया, वर्ना रंग ही बदलने से काम निकाल लिया ! जिन झाड़ियों, पत्तियों के बीच यह छिपा हुआ अपने शिकार की ताक में रहता है, उन्हीं के रंग में रम जाता है। यहाँ तक कि पत्तियों के हिलने की नकल भी बखूबी कर लेता है। अपना पुराना केंचुल बदलकर तो यह आकर्षक साज-सज्जा में हो जाता है। यह अफ्रीका में बहुतायत से पाया जाता है। इस जाति के प्राणियों में सींगोंवाला गिरगिट भी होता है। देखने में यह जितना डरावना होता है, स्वभाव में उतना ही सीधा-सादा होता है।

इन मूक, प्राणियों के लिए चोला बदलना कितना सरल है !

मत्स्य-भोजन में भी रेडियो सक्रियता

आणविक विस्फोट के प्रयोगों ने वातावरण की रेडियो सक्रियता बढ़ाकर पृथ्वी निवासियों के लिए तो विभिन्न कठिनाइयाँ प्रस्तुत की ही हैं, सागरों में रहनेवाली मछलियों को भी बाकी नहीं छोड़ा। इस प्रभाव से दूषित मछलियों के विविध खाद्य हानिकारक सिद्ध हुए हैं और मत्स्याहारी वर्ग के लिए यह एक चिन्ता और खोज का विषय बन गया है।

झींगुर की मदद लीजिए

पौधों को चरनेवाले, पौधों को बनायेंगे। अमरीका के अनेक पश्चिमी राज्यों में अंगूर की लताओं तथा अन्य नाजुक पौधों में लग जानेवाले रोगों की रोक-थाम के लिए झींगुरों का प्रयोग किया जा रहा है। सामान्यतः तो झींगुर पौधों को चट करते रहते हैं किन्तु ये पालतू झींगुर उनके रोगाणुओं का सफाया करते रहेंगे। अतः झींगुरों को देश-विदेशों से उनकी स्वस्थता की जाँच करके मंगाया जा रहा है और विशेष नस्लें तैयार की जा रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये अनजाने

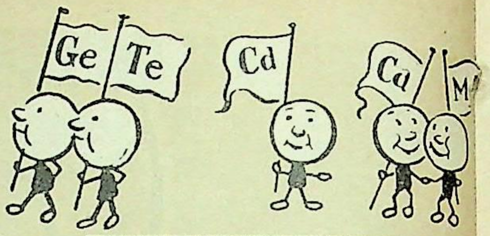

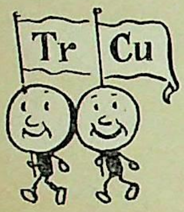

बिखरे तत्त्व

दिनेशकुमार गौतम

भू-रसायनज्ञों (geochemists) में से कुछ ऐसे भी होते हैं जो पृथ्वी के गर्भ तथा खान-खदानों के ही अध्ययन में लगे रहते हैं। दूसरी ओर दृष्टि उठाने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। लम्बे समय तथा अथक परिश्रम और अनन्त प्रयोगों के पश्चात् भी वे बहुत कुछ सा लेकर सामने नहीं आते। जो उनके कार्य को पहचानते हैं वे जानते हैं कि उनकी वह थोड़ी सी भी उपलब्धि विशेष महत्त्वपूर्ण होती है। वे ऐसे-ऐसे दुष्प्राप्य धातु-तत्त्व खोजकर लाते हैं जो सामान्यत: सहज उपलब्ध नहीं। पृथ्वी में गर्भस्थ रासायनिक धातु-तत्त्वों की सूची यों तो काफी लम्बी है, किन्तु अभी तक केवल पन्द्रह ही तत्त्व ऐसे प्राप्त हुए हैं जो सरलतापूर्वक और अधिकता से प्राप्त हो सकते हैं। शेष में अनेक ऐसे हैं जो काफी अल्प मात्रा में तथा जहाँ-तहाँ बिखरे-बँटे रहते हैं। इन्हीं की खोज में हमारा आज का भू-रसायनज्ञ व्यस्त रहता है। यह कार्य ही ऐसा श्रमसाध्य है।

ये कम सुने, कम जाने नाम

सोना और प्लेटिनम इन्हीं में गिनाया जा सकता है। कितने परिश्रम से, कितने बड़े ढेर में, कितना जरा सा मिल पाता है! उन कम जाने-पहिचाने धातु-तत्त्वों के नाम अधिक प्रचलित न होने से हर किसी पुस्तक में मिलेंगे भी नहीं। इनमें से कुछ हैं: गेलियम (Gallium), इण्डियम (Indium), थेलियम (Thallium), जर्मेनियम (Germanium), सेलेनियम (Selenium), टेल्यूरियम (Tellurium), रिहनियम (Rhenium), सीसियम (Cesium), स्केण्डियम (Scandium) तथा हैफनियम (Hafnium)। ये प्रकृति में कहाँ-कहाँ फैले हुए हैं और हमारे वैज्ञानिक किन-किन तरीकों से इनके गुणों और उपयोगों की जानकारी प्राप्त करते हैं, यह निम्न पंक्तियों से ज्ञात होगा।

विशिष्ट गुण तथा उपयोग

जिंक ब्लेण्ड (Zink Blende) को स्फेलेराइट (Sphalerite) भी कहते हैं। यह कत्थई झलक लिए हुए पीले ढेलेनुमा होता है। इसे तोड़ने पर इसके टुकड़ों की सतह बड़ी चिकनी और चमकीली निकलती है। खान से निकला हुआ इसका नमूना कच्ची धातु जैसा किंचित् भी नहीं दीखता किन्तु है वही। इसमें केवल जस्ता और गंधक समभाग में होते हैं। इसकी संरचना सरल प्रतीत होती है, किन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं है। एक्स-रे द्वारा पता लगाया गया है कि इसकी रचना बड़ी मनोरंजक है। गंधक और जस्ते के अणु बराबर होने के बावजूद इस प्रकार संगठित हैं कि जस्ते के चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी 80150

अणुओं के घेरे में एक अणु गंधक सटा हुआ है और गंधक के चार अणुओं के घेरे में जस्ते का एक अणु बैठा हुआ है। जिंक ब्लेण्ड के और नमूने भी होते हैं जिनमें कत्थई रंग गहरा होता-होता काले रंग तक पहुँच जाता है। इसमें यह परिवर्तन लोहे की कम या अधिक मात्रा मिश्रित हो जाने के कारण होता है। लोहा भी विशेष प्रकार और नियम के अनुसार ही मिश्रित होता है। हलके कत्थई रंग में तो यह जस्ते के प्रति १००वें अणु को हटाकर उसकी जगह ले लेता है। फिर यह १०० से घटाता हुआ प्रति ५०वां, ३० वां, २०वां तथा १०वां करते-करते अपना अनुपात बढ़ा लेता है। जिंक ब्लेण्ड में अधिक मात्रा गंधक, जस्ता तथा लोहे की होते हुए भी इसका मूल्य इन तीनों में से एक भी पदार्थ के कारण नहीं। चौथा पदार्थ केवल ·१ प्रतिशत अर्थात् एक सहस्रांश के अनुपात में होते हुए भी इन तीनों पदार्थों की कुल मात्रा की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है। वह पदार्थ है इण्डियम।

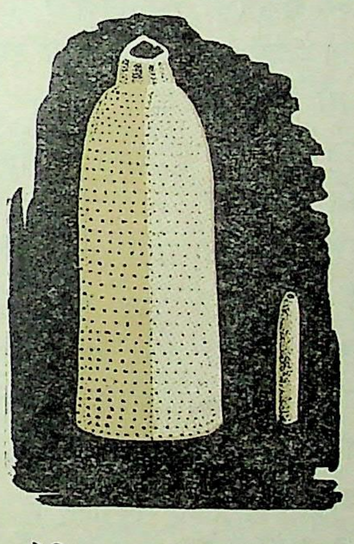

थोरियम डाइ-आक्साइड का उपयोग गैस-मेन्टल बनाने में किया जाता है

इण्डियम, दुर्लभ और अमूल्य पदार्थों में से है। गुणों में अल्यूमिनियम तथा थैलियम से मिलता-जुलता है। यह नर्म, श्वेत धातु साधारण ताप पर हवा-पानी में खराब नहीं होती। यही विशेष गुण इसे मूल्यवान पदार्थों की श्रेणी में रखता है।

थोरियम आक्साइड (Thorium oxide) भी ऐसा ही एक दुर्लभ पदार्थ है जो तप्त होने पर तीव्र प्रकाश देता है। इसका उपयोग गैस मेन्टल बनाने में किया जाता है। सीसियम बिल्कुल रुबीडियम की तरह है। इसका उपयोग एलेक्ट्रान-परावर्तक दर्पणों के बनाने में होता है। इसलिए फोटो-सेल के उद्योग में यह अत्यन्त उपयोगी है।

गेलियम (Gallium) एक तीसरी विचित्र धातु है। यह भी जिंक ब्लेण्ड तथा अभ्रक में पाई जाती है। यह केवल ३०°C ताप पर ही पिघल जाती है। अतः पारे (जो ३९°C पर पिघलता है) की स्थान-पूर्ति यह भलीभांति कर लेती है। पारे की वाष्प तो अत्यन्त जहरीली होती है जबकि गेलियम उस दोष से भी मुक्त है। अतिरिक्त लाभ यह है कि तापमापी बनाने में पारे की दौड़ ४०°C से ३६०°C तक ही सीमित है, क्योंकि पारे का क्वथनांक ३६०°C है। इसके मुकाबले गेलियम का तापमापी ३९°C से लेकर ७००°C/६००°C के मध्य शीशा पिघलने तक, तथा क्वार्ट्ज शीशा लें तो १५००°C तक का बना सकते हैं क्योंकि गेलियम का क्थनांक २३००°C है। इसमें एक विचित्रता और भी है। बिस्मथ, पैराफिन, पिग आइरन तथा बर्फ की तरह यह अपने ही द्रव में तैर लेता है। अन्यथा, अन्य धातुएँ प्रायः अपने द्रव में डूबी रहती हैं।

यह तो प्रत्यक्ष है कि तांबा-मिश्रित धातु समुद्र के खारे पानी के प्रभाव से क्रमशः खराब होती रहती है। पनडुब्बियों तथा अन्य जलयानों में जहाँ-जहाँ तांबे का उपयोग अनिवार्य है वहाँ यह भी सम्भव नहीं कि बार-बार किसी रासायनिक पेंट आदि से उसे सुरक्षित रखा जाए। इण्डियम की उचित मात्रा मिली हुई वह धातु उस हानि का देर तक मुकाबला किए रहती है। धातु की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

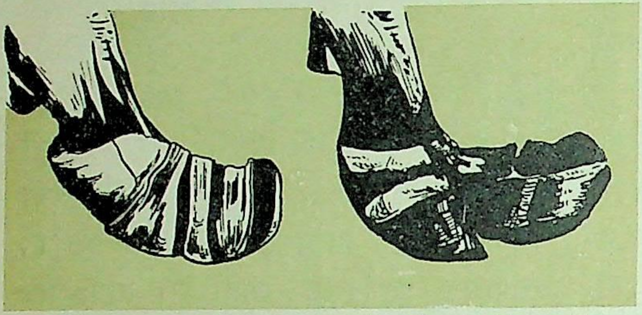

सेलेनियमयुक्त अस्वास्थकर घास के मैदानों में चरती हुई गायों के खुर इस प्रकार रोगाक्रान्त हो जाते हैं

क्षमता काफी बढ़ जाती है। इण्डियम अपने सहयोग द्वारा चाँदी की चमक काफी बढ़ा देता है। अतः शक्तिशाली सर्चलाइट के दर्पणों में इण्डियम का उल्लेखनीय सहयोग रहता है।

कैडमियम के कुछ उपयोग तो ज्ञात ही होंगे ! एक उल्लेखनीय उपयोग और भी है। कभी ट्राम की छत पर लगे उस ढांचे (bow) को देखिएगा जिस पर ऊपर का तार घिसता चलता है। ढांचे में उस जगह पड़ा हुआ गड्डा बतायेगा कि घिसाई कितनी अधिक होती है। वही हाल ऊपर के विद्युत-वाहक तांबे के तार का भी समझिए। अतः मजबूती के लिए उस तार की धातु में कैडमियम मिलाना बहुत आवश्यक हो जाता है।

सेलेनियम गंधक का निकट सम्बन्धी है। चाँदी, सीसा और तांबे के सल्फाइड-युक्त खनिज पदार्थों में रहता है। व्यावसायिक रूप से यह सल्फ्यूरिक एसिड उत्पादन के अन्तर्गत चैम्बर में बचे हुए द्रव्य से तथा विद्युत विच्छेदन द्वारा तांबे की शोधन क्रिया में धनाग्र (anode) पर एकत्र हुए द्रव्य से प्राप्त किया जाता है। इस पर पड़नेवाले कम या अधिक प्रकाश से इसकी विद्युतवाहक शक्ति घटती-बढ़ती रहती है। इस विशेषता के कारण टेलीग्राफिक रेडियो द्वारा चित्र भेजने की क्रिया में इसका उपयोग होता है। ऐसे स्वचालित यन्त्रों में भी इसका उपयोग आवश्यक होता है जो घूमती हुई प्रकाशमान तथा अप्रकाशमान वस्तुओं का लेखा अंकित करती हैं। साथ ही, प्रकाश पुंज की शुद्ध माप इसी के द्वारा सम्भव हो सकी है।

कांच के उद्योग में भी सेलेनियम बहुत उपयोगी है। कांच की सतह में हरे रंग की झलक लौह-तत्त्व के मिश्रण के कारण होती है। उसे सेलेनियम ही दूर कर सकता है। अतः विशुद्ध, कांच बनाने में यह पदार्थ बहुत उपयोगी है, क्योंकि चश्मे, दूरदर्शी तथा सूक्ष्मदर्शी आदि के लैंस सर्वथा निर्मल कांच के ही बनाए जा सकते हैं।

इस सीमित स्थल पर इन समस्त धातु-तत्त्वों का वर्णन सम्भव नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि इन तत्त्वों की खोज पग-पग पर नया ही पथ खोलने की क्षमता रखती है। इस दिशा में अभी बहुत कुछ करने की गुंजाइश है। ●

अल्यूमिनियम के पुल

सोवियत संघ में निश्चित क्रम से सफलतापूर्वक इस्पात के पुलों की स्थानपूर्ति अल्यूमिनियम के पुलों द्वारा हो रही है। यह प्रयोग-सिद्ध है कि अल्यूमिनियम मजबूती में तो इस्पात के मुकाबले है और वजन में केवल एक-तिहाई ही बैठता है। इसके अतिरिक्त, इस्पात में आसानी से लग जानेवाले जंग और क्षरण के दोषों से भी यह मुक्त रहता है। वजन का उल्लेखनीय हलकापन इसे किसी भी ऊँचाई पर आसानी से बिठाने में सहायक होता है। यह इतना सुविधाजनक अवश्य है फिर भी अल्यूमिनियम तथा उसके लिए आवश्यक धातु मिश्रणों का कार्य काफी जटिल और पेचीदा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम बड़े दर्शन छोटे

ओमशंकर बाजपेयी

पौधों में बीजांकुरण से लेकर अन्त तक की समस्त जीवनक्रिया कुछेक 'मास्टर-यौगिकों' द्वारा नियन्त्रित होती रहती है। वे मास्टर यौगिक हारमोन्स कहलाते हैं। हारमोन्स की कार्यपद्धति बड़ी सुव्यवस्थित, जटिल तथा विलक्षण रहती है। यद्यपि हारमोन्स थोड़ी ही मात्रा में रहते हैं तथापि वह अल्प मात्रा ही सम्पूर्ण जीवनक्रिया को प्रभावित करती है। छुइमुई (mimosa) एक छोटा सा साधारण पौधा है किन्तु इसकी एक विशेषता सभी को आकर्षित कर लेती है। जरा इसकी पत्तियों को उंगली से छू दीजिए। आप देखेंगे कि पत्तियाँ तुरन्त बन्द होने लगती है! जरा और छूने पर तो वे बिल्कुल ही बन्द हो जाएंगी और समूचा पौधा मानो निर्जीव होकर लटक पड़ेगा। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे चेतना लौटने पर पत्तियाँ पूर्ववत् हो जाएंगी। यह क्रिया इनमें रहे हुए एक प्रकार के हारमोन के कारण ही होती है। यह किसी भी कठोर वस्तु के स्पर्श को बिजली की गति से ग्रहण करके एक कोशिका से दूसरी और दूसरी से तीसरी में दौड़ा देता है। कोशिका-द्रव्य साइटोप्लाज्म (cytoplasm) भी उत्तेजित हो उठता है और वह अपने अन्दर का जल-भाग एक निश्चित मात्रा में मध्य-स्थानों पर एकत्र कर देता है। यह उत्तेजना-क्रम सिरे की पत्तियों से पत्र-मूल की ओर चलता है। इसी तनाव के घटने-बढ़ने से पत्तियाँ मुँदती-खुलती हैं। उत्तेजना का प्रभाव समाप्त होने पर वही जल-भाग पूर्ववत् बँट जाता है और तना तथा पत्तियाँ आदि ज्यों की त्यों सचेत हो जाती हैं। सभी पौधे ऐसी विशेषता प्रदर्शित नहीं कर पाते। इसका अर्थ यह नहीं कि उन अन्य पौधों में यह संवेदनशीलता होती ही नहीं। पौधों की अधिकांश क्रियाएँ इतनी मन्द और अप्रत्यक्ष होती हैं कि हम उन्हें देख या पहचान नहीं पाते। हां, वैज्ञानिक अवश्य उन्हें ज्ञात करके हमारे सम्मुख उपस्थित कर देता है।

वनस्पति और संगीत; कुछ नये प्रयोग

नए-नए प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा रहा है कि पौधों के लिए उनका प्रिय वातावरण खड़ा कर दिया जाए तो उनकी प्रत्येक क्रिया तीव्र हो उठती है और वे भी खुशी से झूमने लगते हैं। प्रो. टी. एन. सिंह ने इसी विषय में प्रयोगों द्वारा अनेक मनोरंजक परिणाम प्राप्त किए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उनका मत है कि पौधे संगीत पसन्द करते हैं। वे भी हमारी भाँति ही संगीत की स्वर-लहरी से झूम उठते हैं और तीव्रता से विकसित होते हैं। शायद इसी कारण कृष्ण की मोहिनी मुरली कुंजवनों की सुन्दरता बढ़ा देती थी, हर कली, हर फूल खिला देती थी। ऐसे ही एक प्रयोगस्वरूप जब पौधों को रिकार्ड-संगीत सुनाया गया तो शीघ्र-विकास के लक्षण स्पष्ट हो उठे।

इस प्रकार के प्रयोग गेहूँ, जौ, चावल तथा विभिन्न पौधों पर भी सफलतापूर्वक किए गए। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी ऐसे प्रयोग किए गए हैं। इसका रहस्य यही समझा जा सकता है कि पौधों की कोशिकाओं का जीवद्रव्य साइटोप्लाज्म सजीव है और उसमें ध्वनि, विशेषतः संगीत स्वर-लहरी ग्रहण करने की क्षमता है। परिणामतः पौधे के हारमोन्स की सक्रियता बढ़कर फलने-फूलने का वेग बढ़ा देती है। वे ही हारमोन्स प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया भी तीव्र करके पोषक तत्वों के निर्माण में सहायक होते हैं।

चिकित्सक हारमोन्स

हारमोन्स पौधों की अन्य प्रकार से भी सहायता करते हैं। किसी पौधे को कहीं चोट लग जाए तो चिकित्सक के रूप में उसके उपचार के लिए तुरन्त पहुँच जाते हैं। ट्राउमेटिक एसिड या डाइकार्बोक्सिलिक एसिड ऐसे ही दो पदार्थ हैं जो हारमोन्स की भाँति चोट के स्थान को जीवाणुओं से सुरक्षित रखने तथा नये अंग (tissues) को बनाने में सहायता करते हैं। अब तक कृषक पौधों की केवल उत्पादकता पर ही निर्भर रहता था और जैसे भी फल आ जाएँ, अपना भाग्य समझकर सन्तोष कर लेता था। अब तो गस्टाफसन नामक वैज्ञानिक ने फलों का नियंत्रण करनेवाले हारमोन्स की खोज करके इस धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया है। पराागण के उपरान्त शीघ्र फल-निर्माण में पेन्टोथिनिक एसिड और एडनीम हारमोन्स सहायक होते हैं। फल और बीज पर ही तो पौधे का भविष्य निर्भर रहता है! इन्हीं हारमोन्स पर पौधों की वंश-परम्परा भी निर्भर रहती है।

छुइमुई का पौधा

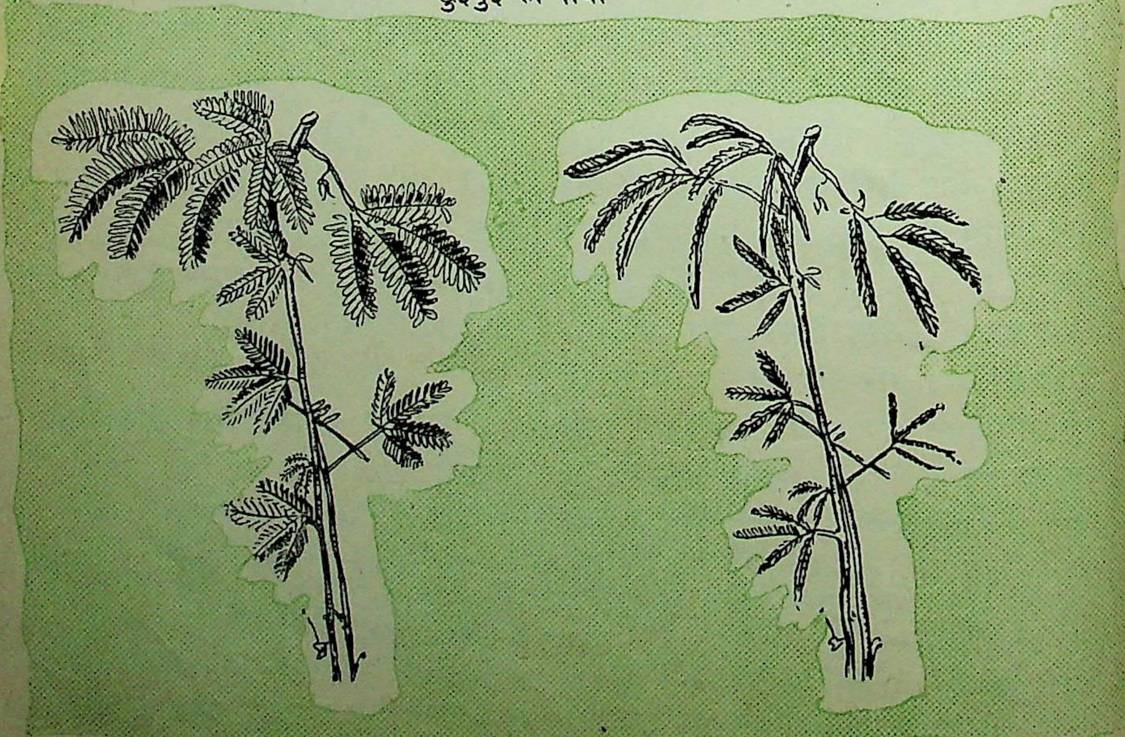

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फल में गूदा ही गूदा, बीज नहीं !

गस्टाफसन ने कुछ पौधों से हारमोन्स निकालकर उनका घोल जब टमाटर के फूलों पर छिड़का तो पाया कि परागण बगैर ही उन फूलों में फल लग गए ! यों, इस प्रयोग ने बिना परागण, फल उत्पन्न करने का नया मार्ग सुझा दिया। यह पाया गया कि इस प्रकार उत्पन्न किए गए फलों में रस, गूदा और स्वाद अधिक तथा बीज कम और मुलायम होते हैं। व्यावसायिक दृष्टि से भी यही अधिक उपयोगी माना जाएगा कि फलों में रस, गूदा और स्वाद अधिक से अधिक हो, बीज कम से कम। इन्हीं हारमोन्स के द्वारा बीजरहित टमाटर भी उपजाना सम्भव है।

इतना ही नहीं, कच्चे फलों का टूट गिरना भी हारमोन्स द्वारा रोका जा सकता है। 2-4-D नामक रासायनिक द्रव यदि हलके घोल के रूप में पेड़-पौधों पर छिड़क दिया जाए तो कच्चे फलों का गिरना रुक जाएगा। अतः मूल्यवान फलों के बगीचों में, जहाँ सेब, सन्तरा, नाशपाती, नीबू, आदि उगाये जाते हैं, वहाँ वृक्षों पर 2-4-D का छिड़काव करने से फल समय से पूर्व नहीं गिरते। इस प्रकार उनकी अनावश्यक क्षति रुक जाती है।

हारमोन्स-युक्त कलम अधिक सम्पन्न

जिन पौधों में कलम (grafting) द्वारा प्रजनन कराया जाता है, उनमें भी हारमोन्स अपना महत्त्व रखते हैं। एक टहनी को काट-कर उसका सिरा मिट्टी में गाड़ दिया जाता है, तो कुछ समय के पश्चात् नयी जड़ें जम जाती हैं और वह कलम लग जाती है। इसमें वास्तविकता यह है कि तने की निर्माण-क्रिया का नियन्त्रण करनेवाला हारमोन IAA अन्य शर्कराओं की सहायता द्वारा कटे हुए भाग से नवीन जड़ें निकालने में

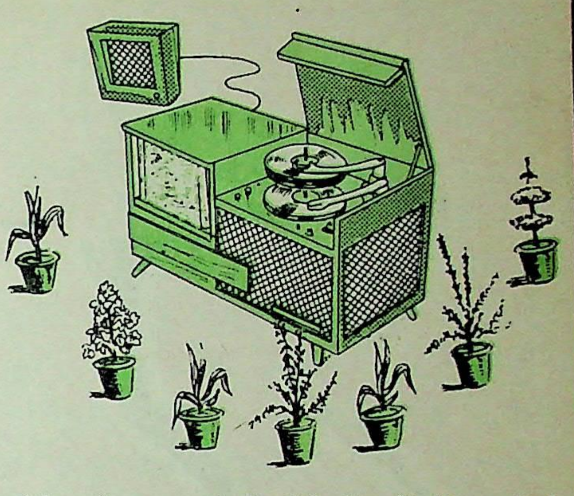

संगीत की सुखानुभूति से पौधे ही क्यों वंचित रहें ! प्रयोग कर देखिये, निराशा तो होगी नहीं

समर्थ होता है। IAA के प्रभाव से उन पौधों के कटे हुए तनों में भी जड़ें निकल आती हैं जिनमें बीज-निर्माण द्वारा प्रजनन होता है, जैसे मटर आदि। इस प्रकार कृत्रिम ढंग से जड़ें प्राप्त किए हुए पौधे अधिक तीव्रता से बढ़ते हैं। अतः बागबानी की दृष्टि से यह बहुत ही उपयोगी हारमोन है। IAA अथवा इससे मिलते-जुलते हारमोनयुक्त पौधों की कलमें दूर-दूर तक भेजी जा सकती हैं और वहाँ उन पौधों को सुगमता से जमाया जा सकता है।

पोषक है तो शोषक भी !

प्रायः देखा गया है कि अमुक पदार्थ यदि एक का पोषक है तो दूसरे का शोषक भी बन जाता है। 2-4-D हारमोन भी इसका अपवाद नहीं। एक ओर तो 2-4-D का हलका घोल गेहूँ, जौ, धान, इत्यादि के खेतों में छिड़कने से फसल को उत्तम और स्वस्थ बनाता है, दूसरी ओर साथ ही उगे हुए कुछ अन्य पौधों को नष्ट भी करता है। पौधे इन हारमोन्स को पत्तियों द्वारा ग्रहण करते हैं, जड़ों द्वारा नहीं। अतः इस विशेषता का भी वैज्ञानिकों ने पूरा लाभ उठाया है। गेहूँ के खेत में अनेक अनावश्यक पौधे स्वतः उग आते हैं, और खेत का पानी तथा पोषक तत्त्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

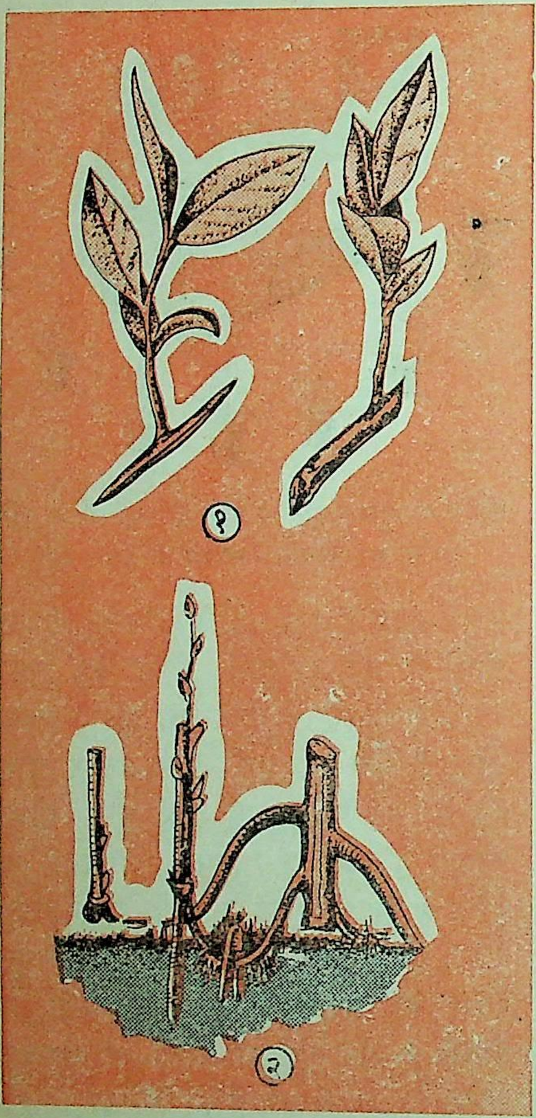

हारमोनयुक्त कलमें लगाकर अधिक स्वस्थ और पुष्ट पौधे प्राप्त किये जा सकते हैं
१. तराशी हुई कलमें, २. कलमें रोप दी गयीं

खींचते रहते हैं। उन निरर्थक पौधों के कारण उपयोगी फसल घाटे में रहती है। यदि इनकी रोकथाम न की जाए तो ये निश्चय ही किसान के लिए विकट समस्या बन जाएँ। इसी कारण किसान इन पौधों को उखाड़ फेंकता है। यदि इनकी जड़ें पृथ्वी में रह जाएँ तो ये पुनः उग आते हैं। इसलिए आजकल खेतों में अनावश्यक पौधों को, जिन्हें वीड्ज (weeds) कहते हैं, 2-4-D के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है।

2-4-D की इस विशेषता के कारण 'वीड-किलर' भी कहा जाता है। हारमोन्स की इस श्रृंखला में Indolebutyric acid, Naphthalene acetic acid तथा B-Naphthoxy acetic acid उल्लेखनीय हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि ये हारमोन्स पौधों के अन्दर निर्मित नहीं होते, फिर भी पौधों की वृद्धि में सहायक हैं। इन पदार्थों की रचना IAA की तरह है जिसे पौधे स्वयं बनाते हैं।

इन यौगिकों की सफलता से उत्साहित होकर वैज्ञानिकों ने अन्य अनेक यौगिकों का निर्माण किया है और उनके सफल परीक्षण भी किए हैं। इनकी सहायता से हम अधिकतम लाभ उठा सकेंगे, तथा खाद्याभाव की समस्या काफी अंश तक हल की जा सकेगी।

यह मकान नहीं गिरेगा

तुर्कमेनिया के अश्खाबाद नगर का एक नव-निर्मित मकान आज यह कहने में समर्थ है कि धरती भले ही करवट बदलती रहे, मकान की नींव भूकम्प के उन धक्कों को पी जायगी। तीन सोवियत इंजीनियरों ने मिलकर इस मकान की नींव बनायी है। मकान धरती पर नहीं, धातु-निर्मित आधारों पर खड़ा है जो धरती के कम्पनों को जज्ब कर लेते हैं। ऐसे ही दूसरे एक मकान की नींव हवा की एक परत पर स्थित है जो भूकम्प की लहरों से मकान को अछूता ही रखती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

तीरंदाज फूंक !

साधारणतया तीरंदाजी हस्तकौशल का विषय है ! कुछ ऐसे भी लोग हैं जो इसमें बगैर हाथ दिखाए ही असाधारणता पैदा किए हुए हैं । तीरंदाजी के लिए उन्हें हाथों का प्रयोग करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती । वे हैं दक्षिण अमरीका के आदि-वासी—इण्डियन्स । मछलियों में आर्चरफिश (archer fish) तथा रेप्टाइल्स में शेम-लियन (chamaeleon) अर्थात् गिरगिट तो आप जानते ही हैं, मुँह की पिचकारी से कैसा अचूक निशाना साधकर शिकार कर लेते हैं ! वैसे ही एक आदिवासी को चित्र में देखिए; मालूम होता है कि बिगुल फूंकने जा रहा है । वास्तव में कुछ और ही है । यह एक फुँकनी है और इसमें से फूंक के जोर से एक तीर निकलेगा जिसकी जहरबुझी नोक के लक्ष्यवेध से शिकार बच न पाएगा । कुरारी (curari) नामक जिस वानस्पतिक विष का उपयोग तीर बुझाने में किया जाता था, उसी से आधुनिक विज्ञान ने मानव के लिए वरदान स्वरूप दो अमूल्य औषधियों का निर्माण किया है । इनमें एक का उपयोग संज्ञानाशक (anaesthetic) के रूप में होता है ।

कागज की रद्दी खायी जाती है

अजायबघरों, पशुवाटिकाओं में जबकि अन्य पशु कठघरों में, सीखचों में बन्द रहते हैं, बकरियों को खुला घूमने दिया जाता है, क्योंकि उनसे कोई खतरा नहीं । उन बकरियों पर तरस खाकर प्रायः ही दर्शकगण मिठाई, बिस्कुट आदि बची-खुची जूठन खिलाते रहते हैं । उस मुलायम भोजन की अधिकता कहीं पाचनक्रिया न बिगाड़ दे, इसकी सूझ प्रकृति ने उन्हें खूब दे रखी है । अतः अन्तःप्रेरणा से ही वे पैकिटों, पुड़ियों आदि के रद्दी कागज खा-खाकर आँतों को खुरदरा और मोटा भोजन (roughage) पहुँचाती रहती हैं । तब कहीं उनके पाचन का सन्तुलन बन पाता है । साथ ही, वहाँ के सफाईवालों का कार्य भी काफी हलका हो जाता है; क्योंकि बकरियों की कृपा से रद्दी बहुत कम बच पाती है । बकरियाँ भी जब कागज का तोड़ा पड़ जाता है तब आने जानेवाले किसी के भी कपड़े तक खींच लेने में नहीं हिचकतीं !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफेद हाथी, एक मंहगा सौदा

किसी भी बेकार तथा भारी खर्चे को सफेद हाथी बाँधने की मिसाल क्यों दी जाती है, इसका भी एक मनोरंजक इतिहास है। एशिया के कुछ प्रदेशों में पहले अल्बिनो (albino) जाति के सफेद हाथी जहाँ भी पाए जाते थे, बड़े पवित्र माने जाते थे। उन्हें किसी भी काम में लगाना पाप समझा जाता था। अतः जब भी ऐसा हाथी पाया जाता था तो किसी राजा के संरक्षण में भेज दिया जाता था। वहाँ बगैर काम-धाम किए, वह मुफ्त के माल मारा करता था। उसका खर्चा उठाने की गुंजाइश राजे-महाराजों को ही हो सकती थी। इसीलिए आज भी यदि कोई व्यक्ति अपनी हैसियत से बाहर का खर्चा बाँध लेता है तो सफेद हाथी बाँधना ही कहा जाता है।

गोली से पहले खुद निशाने पर !

अब वह बात भी बहुत सोच-विचार कर माननी पड़ेगी जिसमें तीव्रतम वेग के लिए बन्दूक की गोली की मिसाल दी जाती थी। एक तीव्रगामी जेट विमान की ऐसी ही आत्मघाती उड़ान का समाचार मिला है जो इस धारणा की पुष्टि करता है। उस विमान ने उड़ान के दौरान में अपनी तोप से एक गोला दाग दिया और स्वयं तेजी से उसी दिशा में तनिक झुककर डुबकी लगा गया। वह डुबकी ही उसके विनाश का साधन बन गयी, क्योंकि तीन मील नीचे पहुँचते ही विमान अपने उसी गोले का निशाना बन गया और रह गयी यह कहानी मात्र !

अंगूर के गुच्छे पृथ्वी के अन्दर !

है न, आश्चर्य ! दक्षिण-पश्चिमी भारत में एक स्थान पर जमीन खोदते हुए मजदूर यह देखकर आश्चर्यचकित हो गए कि ५-६ फुट की गहराई पर पहुँचते-पहुँचते तो कितने ही ऐसे गुच्छे हाथ लगे जो बिल्कुल अंगूर ही लगते थे; लगते ही नहीं, चखने में भी शहद का स्वाद देते थे ! प्रकृति के इस अन्यतम आश्चर्य पर अधिक खोज की गयी तो मालूम हुआ कि चींटी जैसे क्षुद्रतम जन्तुजगत की वह महान् उपलब्धि थी। चींटियों में ही एक वर्ग ऐसा अलग पड़ जाता है जो मधु-चींटियाँ बनना पसन्द करता है। शैशवावस्था में ही ऐसी चींटी एक मधुकलश बनना प्रारम्भ कर देती है। उस अवस्था में अन्य अंगों के साथ ही पेट भी काफी लचीला रहता है। रातों को जब कि अन्य चींटियाँ अपने दिनभर के परिश्रम के पश्चात् विश्राम करती हैं, ये चींटियाँ उन कीटों के निकट पहुँच जाती हैं जिन्हें एफिड (aphids) कहते हैं। एफिड वर्ष भर में केवल कुछ ही सप्ताह पौधों, फूलों से रस चूसने का कार्य करते हैं। उनके अंग से चींटियाँ चिपटकर रस चूसती और स्वयं फूलती रहती हैं। परिवार की शेष समस्त चींटियाँ अपने इन मधुकलशों को बड़े जतन से छत पर उलटा लटकाए रहती हैं और वर्षभर इसका उपभोग करती हैं। कभी ये गिर भी जाएँ तो अनेक चींटियाँ मिलकर इन्हें उठाकर पुनः जमा देती हैं, क्योंकि मारे बोझ के ये स्वयं हिल-डुल भी नहीं सकतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

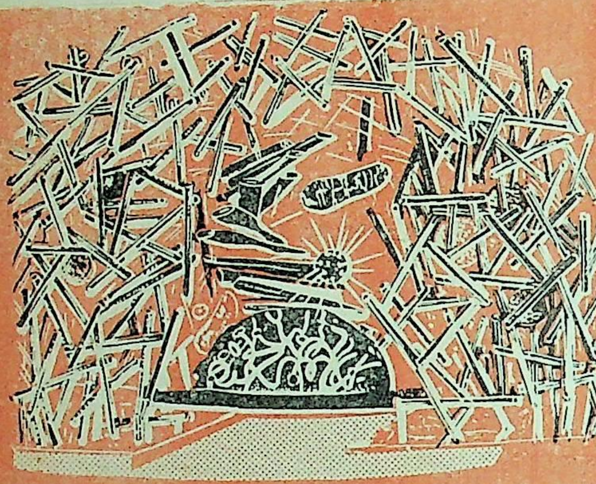

इस लेख का शीर्ष-चित्र—सानफ्रान्सिस्को (अमरीका) की अमरीकन मेडिकल एसोसिएशन के उपयोगार्थ वहाँ की अपजहान कम्पनी द्वारा १६५८ में प्रस्तुत किया गया यह अद्वितीय प्लास्टिक-निर्मित मॉडल जीव-कोशिका के सूक्ष्म अंग-प्रत्यंग का उत्तम प्रदर्शन करता है। २४ फुट व्यास का यह विशाल अर्द्धगोलाकार मॉडल दर्पण की सतह पर रखा गया है जिससे कि कोशिका सम्पूर्ण गोलाकार में प्रदर्शित हो। एक कोशिका का यह अनुमानत: १० लाख गुना विशालित दृश्य है।

शरीर की इकाई कोशिका

कौशलेन्द्रमोहन तिवारी

सुनियोजित समुदाय से सिपाहियों के बटालियन, नागरिकों के समाज और मन्त्रियों के मन्त्रिमण्डल की रचना होती है। ठीक इसी प्रकार कोशिकाओं (सेल्स) से हमारे शरीर की रचना होती है।

घटना लगभग ३०० वर्ष पूर्व की है। सन् १६६५ में एक दिन वैज्ञानिक राबर्ट हुक (Robert Hooke) अपनी प्रयोगशाला में बैठे हुए कुछ सोच रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि सामने रखी बोतल के कार्क पर जम गई। कार्क किस चीज से बना है, इसी जिज्ञासावश उन्होंने उसका एक चप्पा काटकर सूक्ष्मदर्शी के नीचे रखा। एकाएक वे कह उठे—'अरे ! यहाँ तो छोटी-बड़ी न जाने कितनी कोठरियाँ हैं !' वे ही कोठरियाँ थीं, कोशिकाएं (सेल्स)।

कोशिका सिद्धान्त

सन् १८३८-३६ में श्लीडन (Schleiden M. J.) और श्वान्न (Schoenbein C. F.) नामक दो जर्मन वैज्ञानिकों ने कोशिका सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि प्रत्येक जीव कम या अधिक कोशिकाओं के समूह से ही बना होता है। रचनात्मक दृष्टिकोण से तो ये कोशिकाएं शरीर की इकाई हैं ही परन्तु कार्यात्मक दृष्टि से भी कोशिकाएँ शरीर का आधार हैं। आगे चलकर इसी आधार पर जन्तु-जगत् को दो खण्डों में बाँट दिया गया—एक का नाम प्रोटोजोआ (Protozoa) अर्थात् एक-कोशीय और दूसरे का नाम, मेटाजोआ (Metazoa) अर्थात् बहुकोशीय।

स्वरूप और आकृति

अब प्रश्न उठेगा कि कोशिका क्या है ? मोटे तौर पर समझना चाहिए कि कोशिका जीवद्रव्य (protoplasm) का एक ऐसा पिंड है जिसमें एकनाभिक (nucleus) अनिवार्य रूप से रहता है। अमीबा (Amoeba) और श्वेत रक्त-कण इस बात के प्रमाण हैं कि कोशिकाओं का स्वरूप तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकार सदैव समान अथवा निश्चित नहीं रहता। एक ओर तो एककोशीय बैक्टीरिया सूक्ष्मदर्शी में भी सरलता से नहीं देखा जा सकता, दूसरी ओर शुतुरमुर्ग का एककोशीय अण्डा लगभग ४-६ इंच व्यास का होता है!

जैसे प्रत्येक जीव समय के साथ-साथ एक निश्चित अवधि तक ही बढ़ता है, फिर बढ़ना बन्द कर देता है, उसी प्रकार कोशिका का भी आकार एक निश्चित समय तक ही बढ़ता है। बाद में उसकी वृद्धि रुक जाती है। यह क्रिया जीवद्रव और नाभिक के पारस्परिक संयोग के कारण होती है। अतः कोशिकाएं लम्बी, गोल, पतली, चपटी, तिकोनी और किसी भी आकार की छोटी या बड़ी हो सकती हैं।

कोशिका के अन्दर दो वस्तुएँ हैं—एक, द्रव और दूसरा, उसमें तैरनेवाला ठोस नाभिक। इस द्रव को साइटोसोम (cytosome) और नाभिक को न्यूक्लियस कहते हैं। साइटोसोम में दो प्रकार की रचनाएँ होती हैं, एक जीवित, दूसरी मृत। पहले जीवित पदार्थों को लें।

जीव-कोशिका विशालित रूप में—**अन्यान्य भागों के अतिरिक्त नाभिक (न्यूक्लियस) के अन्दर क्रोमोसोम स्पष्ट दिखाये गये हैं**

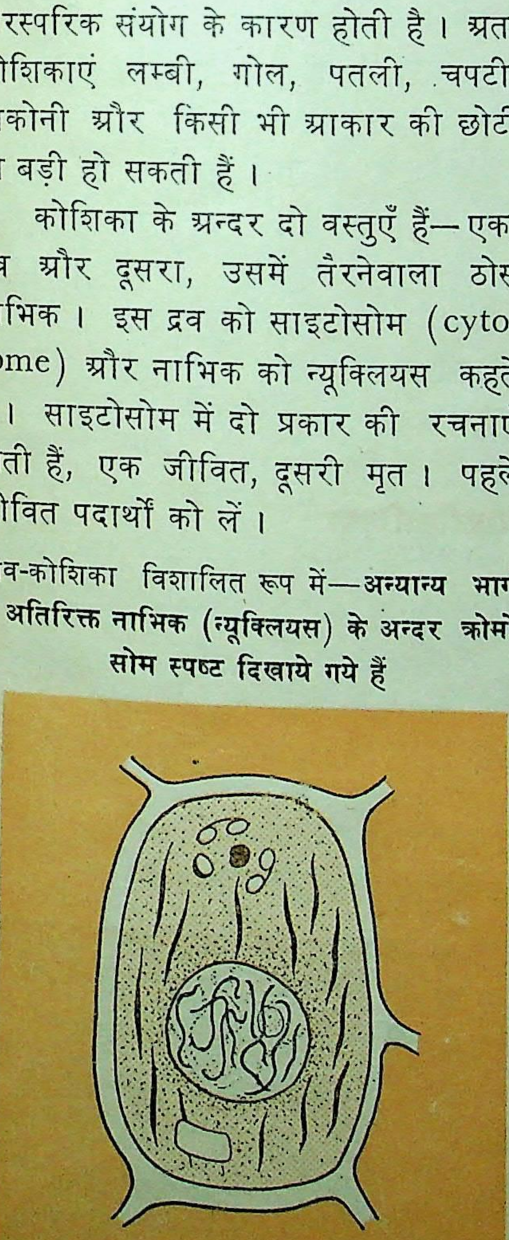

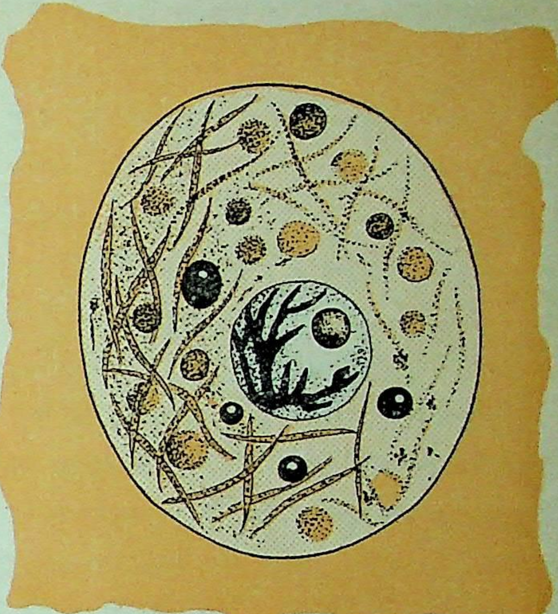

नाभिक (न्यूक्लियस) का अति विशालित दृश्य

साइटोप्लाज्म

कोशिका में जो द्रव भरा रहता है उसे साइटोप्लाज्म कहते हैं। यह एक जटिल रासायनिक पदार्थ है। साइटोप्लाज्म के ५० से ९० प्रतिशत भाग में पानी, तथा शेष में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और अन्य अकार्बनिक लवण होते हैं। जीवद्रव एक कोलॉयडल (colloidal) रचना है जिसमें अनेक ठोस पदार्थ गोलगाई बाडीज (golgi bodies), सेल सेण्टर (cell centre), माइटोकाण्ड्रिया (mitochondria), क्रोमिडियल ग्रेन्यूल्स (chromidial granules) आदि लटके रहते हैं। अतः भौतिकी की दृष्टि से साइटोप्लाज्म 'क्रिस्टलो-कोलाइड' (crystalo-colloid) रचना है। यदि साइटोप्लाज्म से उसकी सारी ठोस वस्तुएँ अलग कर दी जाएँ तो जो द्रव बच रहेगा, उसे हाइलोप्लाज्म (hyloplasm) कहेंगे। जीव-वैज्ञानिकों के मत इसकी रचना के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न हैं। कुछ के मतानुसार इसकी रचना धागे के रेशों जैसी होती है, तो कुछ के अनुसार जालदार तथा दानेदार होती है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि इस द्रव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बीच-बीच में हवा के स्थान भी होते हैं।

सेल मेम्ब्रेन

जन्तु-कोशिका के बाह्यतम आवरण को सेल मेम्ब्रेन (cell membrane) कहते हैं। इसे प्लाज्मा मेम्ब्रेन (plasma membrane) भी कहते हैं। प्रायः इसकी मोटाई १/१०००००० मिलीमीटर होती है। इसकी रचना विभिन्न प्रोटीन और लिप्वायड (lipoid) से होती है। इसकी झिल्ली अत्यन्त लचीली होती है। इसके अन्दर से द्रव का कुछ भाग इस पार से उस पार जाता रहता है। इस प्रवृत्ति को अर्द्धपारगम्यता (semipermeability) कहते हैं। एलेक्ट्रान-सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर कुछ अन्य वस्तुएं भी दिखायी देती हैं। यकृत की कोशिकाओं में सेल मेम्ब्रेन के बाहरी भाग पर उंगलियों के आकार की कुछ रचनाएँ निकली रहती हैं जिन्हें माइक्रोविल्लाई कहते हैं। इनकी उपस्थिति से कोशिकाओं की शोषण-शक्ति कई गुना बढ़ जाती है।

सेल मेम्ब्रेन पर जहाँ-कहीं अधिक अणु एकत्र हो जाते हैं, वहाँ झिल्ली अन्दर की ओर दब जाती है। फलतः एक रिक्त स्थान (vacuole) कुछ देर के लिए बन जाता है। उसे पाइनोसाइटिक वैक्युओल (pinocytic vacuole) कहते हैं। यह सिद्ध करता है कि एककोशीय जीव अमीबा की भाँति अन्य जीवित कोशिकाओं में भी अन्तर्ग्रहण की प्रवृत्ति रहती है। इस क्रिया को पिनोसाइटोसिस (pinocytosis) कहते हैं। सेल मेम्ब्रेन पर कभी-कभी एक अन्य आवरण भी दिखायी पड़ता है जो सेल का न होकर, बाहरी पदार्थ का बना होता है।

गोलगाई बाडीज

नाभिक के चारों ओर दानेदार, तथा सलाई के आकार के जो पदार्थ तैरते रहते हैं उन्हें गोलगाई बाडीज कहते हैं। प्रत्येक गोल्गाई बाडी का बाहरी भाग लिप्वायड तथा भीतरी भाग प्रोटीन का बना होता है। स्रवनक्रिया में यह प्रायः नियमनकर्ता, अर्थात् कन्ट्रोलर का काम करता है। अण्डे की जर्दी के स्रवन में गोलगाई बाडीज का अपना विशिष्ट स्थान है। इनका सम्बन्ध एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम (endoplasmic reticulum) से होता है। अतः इसमें बहुत से रासायनिक पदार्थ एकत्र होते रहते हैं। इस प्रकार, कोशिकारूपी फैक्ट्री में यह स्टोर-रूम का कार्य करता है।

माइटोकाण्ड्रिया

पूरी कोशिका में शलाका जैसी जीवित रचनाएँ पायी जाती हैं। ये दानेदार या बहुत कुछ गोल भी होती हैं। दानेदार माइटोकाण्ड्रिया को काण्ड्रियोमाइट्स तथा गोल माइटोकाण्ड्रिया को काण्ड्रियोस्फीयर कहते हैं।

एलेक्ट्रान-सूक्ष्मदर्शी द्वारा विशालित कोशिका के विभिन्न अंग;
बायें से दायें—माइटोकाण्ड्रिया; सेल-सेण्टर (सेण्ट्रोसोम); तथा एण्डोप्लाज्मिक रेटिकुलम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक खोजों से ज्ञात हुआ है कि ये साइटोप्लाज्म में बहुत तेजी से चलती रहती हैं। इनका ऊपरी भाग तो सपाट परन्तु भीतरी भाग आलमारी के खानों जैसा होता है। माइटोकाण्ड्रिया ही शुक्रकोशिका की ऊपरी नोक बनाती है। वह ऊपरी नोक achrosome कहलाती है। उसी की सहायता से शुक्राणु तेजी से दौड़ने के लिये अपना मार्ग बना लेता है। अध्ययन करने पर मालूम हुआ है कि इनका रंग पीला और रचना कोलेस्ट्रल (collastral), नाभिक प्रोटीन, फास्फोलिप्वायड (phospholipoid) एवं वसा से मिलकर होती है। पायरीडाक्साइन और राइबोफ्लेविन नामक दो विटामिन तथा आक्सीकरण और अनाक्सीकरण की क्रियाओं से सम्बन्ध रखनेवाला पदार्थ 'साइटोक्रोम-सी' भी इनमें रहते हैं। श्वसन और अन्य क्रियाओं के लिए इनमें लगभग १०० से अधिक एन्जाइम (enzymes) होते हैं। यकृत के माइटोकाण्ड्रिया में करीब सभी succin oxidases होते हैं। यकृत तथा अन्य अंगों की कोशिकाओं के माइटोकाण्ड्रिया में कुछ अन्य आक्सीडेसेज (cytochrome oxidases), कुछ फास्फेट तथा डी. पी. एन. साइटोक्रोम-सी रिडक्टेज और टी. पी. एन साइटोक्रोम-सी रिडक्टेज आदि भी पाए जाते हैं।

शुक्र-कोशिका (Sperm-cell) का अतिविशालित दृश्य, शीर्ष, मध्य तथा पुच्छ भाग

सेल-सेण्टर

नाभिक के बाहर साइटोप्लाज्म का कुछ भाग एक झिल्ली से घिरा होता है। इस साइटोप्लाज्म को इडियोसोम (idiosome) और इसमें लटकी हुई दो बारीक वस्तुओं को सेण्ट्रियोल (centriole) कहते हैं। यह सम्पूर्ण आकृति ही सेल-सेण्टर कहलाती है। यह सेल-सेण्टर कोशिका-विभाजन में महत्त्वपूर्ण कार्य करता है।

क्रोमिडियल ग्रेन्यूल्स

ये ग्रेन्यूल्स (दाने) प्राय: पक्षियों के तन्त्रिका-तन्त्र की कोशिका के नाभिक के चारों ओर पाए जाते हैं। इन्हें नाइसल रचनाएँ कहते हैं।

लाइसोम

जीवद्रव में तैरती, उतराती थैलियों जैसी वस्तुएं होती हैं। इनमें बहुत से एन्जाइम एकत्र होते रहते हैं। इन्हें लाइसोम कहते हैं। जब कोशिका स्वयं बीमार हो जाती है तब ये थैलियाँ फट जाती हैं और बीमार कोशिकाओं को नष्ट कर देती हैं। यही कारण है कि त्वचा में होने वाले रोगों से कुछ समय के बाद प्राणी को स्वयं ही मुक्ति मिल जाती है।

मृत रचनाएँ

मृत-रचनाओं में प्रोटीन और ग्लाइकोजन के दाने, विभिन्न वैक्युओल्स, वर्ज्य पदार्थ, वसा तथा कुछ अन्य तत्त्व रहते हैं।

नाभिक (न्यूक्लियस)

नाभिक का आकार पूर्ण रूप से कोशिका के आकार का निर्माण करता है। साधारण अवस्था में यह गोल ही होता है परन्तु विशेष परिस्थितियों में यह कभी शाखाओं जैसा, कभी बीडेड (पिरोये हुए दानों जैसा) तथा कभी लोब्ड (डैनेनुमा) जैसा होता है। कई कोशिकाओं के नाभिक टूटे हुए भी पाए जाते हैं। नाभिक और जीव द्रव के सम्बन्ध को नाभि-जीवद्रवात्मक सारिणी (karyo-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

plasmic index) कहते हैं । इनका सम्बन्ध इस प्रकार है :

$$\frac{\text{नाभिक का आयतन}}{\text{जीवद्रव का आयतन}} = \text{नाभिजीवद्रवात्मक सारिणी}$$

सच पूछिए तो यह विशेष प्रकार का जीवद्रव है जो बाहर की ओर नाभिक-आवरण (न्यूक्लियर मेम्ब्रेन) से ढँका रहता है। पूरी रचना लगभग १/४००००० इंच की होती है। इस जीवद्रव को नाभिक-द्रव (nuclear sap) कहते हैं। इसमें धागे के समान भी कुछ रचनाएँ लटकी रहती हैं जिन्हें क्रोमोनिमेटा कहते हैं। कोशिका-विभाजन से कुछ पूर्व ही इन पर राइबोज न्यूक्लिक एसिड और डीआक्सीराइबोज न्यूक्लिक एसिड नामक प्रोटीन के दाने एकत्र हो जाते हैं। इन दानों को क्रोमोमियर्स

केंचुए की एक कोशिका के नाभिक का एलेक्ट्रान-सूक्ष्मदर्शी द्वारा लिया गया विशालित दृश्य

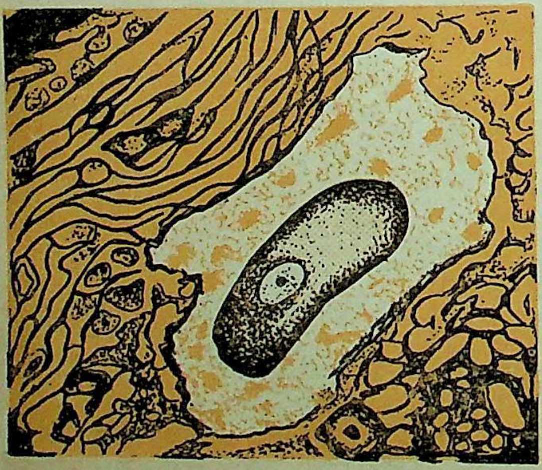

कहते हैं। इनके जमा होने के कारण क्रोमोनिमेटा साफ-साफ दिखाई पड़ने लगते हैं तथा इनका नाम क्रोमोसोम हो जाता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पैतृक गुणों को पहुँचानेवाले 'जीन्स' इन्हीं में रहते हैं। क्रोमोसोम तीन प्रकार के होते हैं—टीलोसेण्ट्रिक, सबटीलोसेण्ट्रिक, और मेटासेण्ट्रिक। टीलोसेण्ट्रिक, बिल्कुल सीधे, सबटीलोसेण्ट्रिक ९०° का कोण बनाकर और मेटासेण्ट्रिक V का आकार बनाकर मुड़ते हैं। तारीफ तो यह है कि जिस स्थान पर ये मुड़ते हैं, वहाँ पर एक ज्वाइण्ट जैसी रचना (सेण्ट्रोमियर) बनाते हैं। कुछ जीव-रसायनज्ञों के मतानुसार जीन्स न्यूक्लिक एसिड और न्यूक्लियोप्रोटीन से बनते हैं। नाभिक द्रव में विभिन्न प्रकार के एन्जाइम, एमाइनो एसिड, लिपिड तथा कैल्सियम, मैगनीशियम और थोड़ी सी मात्रा में पोटैशियम भी पाए जाते हैं परन्तु न्यूक्लियोलस में ये नहीं पाए जाते। प्राणियों की प्रत्येक नस्ल में क्रोमोसोम और उनमें उपस्थित जीन्स की संख्या भिन्न-भिन्न होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कोशिकाएँ ही शरीर की वे रचनाएँ हैं जो स्वयं शरीर की रचना और रक्षा करती हैं, उसे विकास की सीढ़ियों पर चढ़ाती हैं और भावी पीढ़ियों में वंशानुगत प्रकृतियों का वहन करती हैं।

मोटरकार को पेट्रोल से छुट्टी

अमरीका की स्टुअर्ट मोटर कम्पनी ने विद्युत-बैटरी से चलनेवाली ऐसी कार बनायी है जिसके इंजन को पेट्रोल की आवश्यकता ही नहीं। बैटरी के साथ ही चार्जर भी रहता है जिससे आवश्यकता पड़ने पर किसी भी वर्कशाप में बिजली के कनेक्शन द्वारा बैटरी को पुनः चार्ज किया जा सकता है। यह कार ३५ मील तक की रफ्तार दे सकती है। औद्योगिक पैमाने पर इसका उत्पादन शीघ्र ही प्रारम्भ होने की आशा है। प्रति मील इसका व्यय ५ नये पैसे से भी कम बैठेगा। १० फुट लम्बाई और ५ फुट चौड़ाई की यह छोटी सी कार वजन में भी कुल १२०० पौण्ड होगी। इसकी बॉडी फाइबर-ग्लास की तथा सीटें प्लास्टिक की रहेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

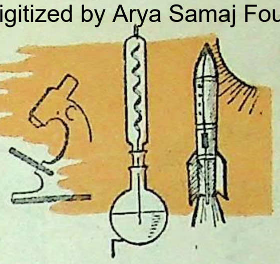

स्ट्रांशियम की छड़ में विद्युत की धारा

परमाणु-शक्ति से विद्युतधारा उत्पन्न करने के प्रचलित तरीके काफी खर्चीले साबित होते हैं कारण कि उनके द्वारा काफी शक्ति व्यर्थ भी चली जाती है। प्रथम तो परमाणु रीएक्टर की उष्मा से जलवाष्प उत्पन्न करते हैं। दूसरे, वह जलवाष्प डाइनमो चलाती है तब कहीं विद्युत उत्पन्न होती है। इस विधि में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के प्रयोग तेजी से किए जा रहे हैं। वैज्ञानिकों ने स्ट्रांशियम-९० (रेडियोधर्मी) युक्त एक ऐसी छड़ तैयार की है जिसके अन्दर रेडियो-सक्रियता से ताप तथा ताप से विद्युत उत्पन्न की जा सकती है। अभी ये प्रयोग प्रारम्भिक अवस्था में होने के कारण विद्युतधारा क्षीण मात्रा में ही प्राप्त की जा सकी है किन्तु इस दिशा में उत्तरोत्तर प्रगति के प्रयास अनवरत किए जा रहे हैं।

भटके हुओं का सहारा—गुब्बारा

अमरीका की जलसेना-विभाग के वैज्ञानिक ऐसे नये प्रयोग सफलतापूर्वक कर रहे हैं जिनके द्वारा यह सम्भव है कि निर्जन स्थलों पर फँसे हुए व्यक्तियों को गुब्बारे की सहायता से आकाश में उठाकर वायुयान में लिया जा सकता है। बीहड़ रेगिस्तान तथा दलदल भरे स्थल ऐसे होते हैं जहाँ वायुयान अथवा हेलिकाप्टर उतारना सम्भव नहीं। इसके लिए एक गुब्बारेयुक्त साधन का प्रयोग किया जाता है जिसे स्काइ-हुक (Sky-hook) कहते हैं। ५०० फुट लम्बे नाइलॉन के रस्से के एक सिरे पर एक लबादा सा फिट रहता है और दूसरे सिरे पर प्लास्टिक का बड़ा गुब्बारा। गुब्बारा फुलाने के लिए उसी में हीलियम गैस का एक सिलेण्डर भी रहता है। फँसे हुए व्यक्ति के ऊपर उड़ता हुआ वायुयान इस स्काइ-हुक को उसके पास गिरा देता है। वह व्यक्ति पहले तो सिलेण्डर खोलकर गैस द्वारा गुब्बारे को भर लेता है और ज्योंही गुब्बारा उड़ान शुरू करता है, वह दूसरे सिरे पर लगे लबादे में प्रवेश कर जाता है। तुरन्त ही हवा के रुख के विरुद्ध वायुयान तेजी से उड़ता हुआ आकर गुब्बारे को रस्से से अलग कर देता है और वह खुला हुआ सिरा यान में अटककर फिट हो जाता है। यान में लगी हुई चरखी उस रस्से को ज्यों-ज्यों लपेटती है, वह व्यक्ति ऊपर उठता आता है और अन्त में उसे यान में ले लिया जाता है। प्रयोगों द्वारा पाया गया है कि ऐसे व्यक्ति को कोई भी असाधारण झटका नहीं लगता।

समुद्र-तल में स्वयं जड़ जमानेवाला लंगर

आधुनिक विज्ञान ने एक नए लंगर का निर्माण किया है। यह लंगर अपने ही बल से समुद्र-तल में काफी गहराई तक धँसता चला जाता है और लगभग तीन लाख पौंड तक के वजन का खिंचाव देते हुए जमा रहता है। इसके सिरे पर राकेट सरीखा एक यन्त्र लगा रहता है जिसमें विस्फोटक पदार्थ भी भरा रहता है। निश्चित संकेत पर एक फ्यूज द्वारा राकेट दग जाता है। फलस्वरूप लंगर नीचे गहराई में उतरता जाता है और राकेट ऊपर रहा आता है जिसे तारों के रस्से द्वारा बाहर खींच लिया जाता है। उसी राकेट को अन्य लंगरों में भी काम ला सकते हैं।

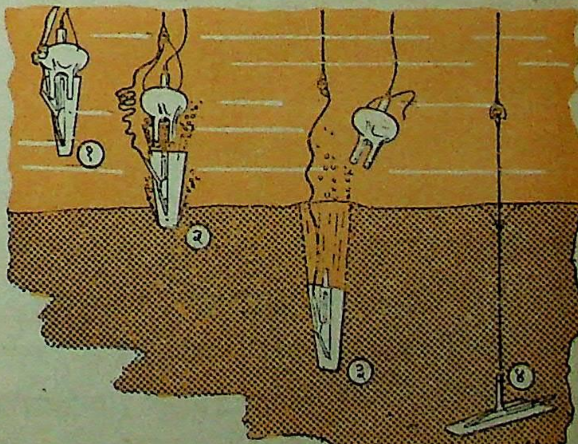

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिन्कोना

जगदीशचन्द्र श्रीवास्तव

औषधि के रूप में कुनेन लगभग तीन शताब्दियों से एक बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाया जा रहा है। कुनेन, सिन्कोना वृक्ष की छाल से प्राप्त किया जाता है। यह वृक्ष अमेजॉन (Amazon) की तराइयों में दक्षिणी कोलम्बिया से बोलिविया तक के प्रदेशों में पाया जाता है। मलेरिया-ज्वर का उन्मूलन ही इसका प्रधान गुण है। सर्वप्रथम सन् १६३० के लगभग पेरू में जिसुइट्स को इसके गुणों का पता चला था। लाक्सा से कुछ मील दूर, दक्षिण की ओर मालाकोटा नामक स्थान के निवासियों में एक किंवदन्ती है कि वहाँ सर्वप्रथम मलेरिया से पीड़ित एक यूरोपियन मिशनरी का इसी वृक्ष से प्राप्त कुनेन के द्वारा इलाज किया गया था। घर लौटने पर उस मिशनरी ने अपने देशवासियों को उस अद्भुत सिन्कोना वृक्ष के गुणों की कहानी सुनाई थी। लाक्सा स्थित कान्वेन्ट के पुस्तकालय में एक हस्तलेख से प्रतीत होता है कि उस समय (१६३० में) सिन्कोना वृक्ष की छाल का उपयोग बहुधा यूरोपियनों द्वारा ही किया जाता था। लगभग उन्हीं दिनों लाक्सा के कोरिग्डार डान फ्रान्सिस्को ज्वर से पीड़ित हुए तो सिन्कोना से प्राप्त कुनेन द्वारा ही वे स्वस्थ हुए। उस प्रयोग ने सिन्कोना की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैला दी।

इंग्लैण्ड में सन् १६५५ के लगभग कुनेन का उपयोग प्रारम्भ हुआ। कई वर्षों तक कुनेन के साथ राबर्ट टेल्वर का नाम जुड़ा रहा। उन्होंने इस औषधि की सहायता से मलेरिया के उपचार में विशेष ख्याति प्राप्ति की। उनकी ख्याति इस तेजी से बढ़ी कि चार्ल्स द्वितीय ने भी अपने ज्वर का इलाज उन्हीं से कराया। इस चिकित्सा की सफलता के कारण उन्हें राजकीय सहायता भी प्राप्त हुई। उनमें चिकित्सक की योग्यताओं की कमी थी, फिर भी इसकी बदौलत वे चार्ल्स द्वितीय के निजी चिकित्सक नियुक्त कर लिए गए।

तत्पश्चात् सन् १६७९ में उन्होंने फ्रान्स का भ्रमण किया और वहाँ भी ज्वर के उपचार के लिये इंग्लैण्ड की भाँति शीघ्र ही अत्यधिक नाम कमाया। टेल्वर की ख्याति सारे फ्रान्स में फैल गयी। सम्राट् लुई १४वें इतने प्रभावित हुए कि अनेक बार उन्होंने टेल्वर से आग्रह किया कि वह कुनेन के अपने सर्वाधिकार उन्हें दे दें। बहुत आग्रह के पश्चात टेल्वर इस बात पर सहमत हुए कि उनकी चिकित्सा का रहस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित किया जाए। १६८१ में उनका देहान्त हुआ। तब तक तो सारे यूरोप में उनकी ख्याति फैल चुकी थी। थोड़े समय पश्चात् ही कुनेन द्वारा चिकित्सा एवं उपचार की गोपनीय विधि प्रकाशित हुई। तभी से कुनेन का भविष्य निखर उठा।

अब तक सिन्कोना वृक्ष की छाल ही कुनेन प्राप्त करने का एकमात्र साधन था। छाल के चूर्ण की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई माँग ने मूल्य में काफी तेजी ला दी थी। १६७५ में कुनेन-पाउडर का मूल्य चार शिलिंग प्रति औंस हो गया। १६७७ में 'लन्दन फार्मोकोपिया' नामक ग्रन्थ में कुनेन को महत्त्वपूर्ण औषधि का स्थान भी प्राप्त हो गया।

इसके पौधे का बीज सर्वप्रथम एक अंग्रेज को प्राप्त हुआ। उसने कुछ बीज अपने भाई के पास भेज दिए। उनमें से उसने कुछ बीज ब्रिटिश सरकार को भेंट करना चाहा, परन्तु उस समय सरकार ने लेना अस्वीकार कर दिया। उनमें से थोड़े बीज लंका के एक कृषक को भेज दिए गए और शेष डच सरकार को उपहार में दे दिए गए।

डच सरकार ने जावा द्वीप-समूह में सिन्कोना वृक्ष के लिए अनुकूल जलवायु का स्थल ढूँढ़ लिया। सन् १८५४ में कई हजार पौधे जहाज द्वारा जावा भेजे गए। वहाँ इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक कारखाना भी स्थापित किया गया। वहाँ पर अनुकूल वातावरण में पौधों की वृद्धि विशेष रूप से हुई। छाल से कुनेन की मात्रा भी दक्षिण अमरीका के मुकाबले दूनी, तिगुनी हो गई। फलस्वरूप गत महायुद्ध से पूर्व ही जावा सारे संसार की सिन्कोना की माँग पूरी करने में समर्थ हो गया। लगभग १५ लाख पौंड सिन्कोना की छाल प्रतिवर्ष जावा से निर्यात की जाती थी।

भारत में सिन्कोना वृक्ष सर्वप्रथम १८५९ में लाया गया था। लंका में तो इसके प्रयोग में सफलता न मिली परन्तु हमारे यहाँ स्थिति सन्तोषजनक रही। इसी प्रकार बोलिविया, कोलम्बिया तथा पेरू आदि देशों में भी इसकी उपज सन्तोषजनक रही।

सिन्कोना का रासायनिक विश्लेषण

लगभग १७९२ में सिन्कोना की छाल का रासायनिक विश्लेषण किया गया। १८१० में स्पेन के एक चिकित्सक ने इससे एक स्फटिक पदार्थ भी प्राप्त किया जिससे 'सिन्कोनिनो' नाम दिया गया। अन्य विश्लेषणों से ज्ञात हुआ कि सिन्कोना की छाल में लगभग ३० प्रकार के वानस्पतिक पदार्थ पाए जाते हैं।

मलेरिया दूर करने की शक्ति केवल चार पदार्थों में पायी गयी है—कुनेन, क्यूनीडीन, सिनक्यूनीडीन तथा सिन्कोनीन। इसमें कुनेन मुख्य है। रसायनशास्त्र के अनुसार ये चारों वानस्पतिक पदार्थ दो जोड़े बनाते

सिन्कोना वृक्ष की एक डाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जिनमें दोनों एक-दूसरे से विचित्र सम्बन्ध रखते हैं। कुनेन के कण कार्बन, हाइड्रोजन, तथा नाइट्रोजन के संयोग से बनते हैं।

आज तो कुनेन शुद्ध रूप में एक बड़े पैमाने पर उपयोग में लाया जा रहा है। इसकी छाल के चूर्ण को चूने के साथ, लेई की तरह गाढ़ा करके भली-भाँति सुखा लेते हैं। तत्पश्चात् एमाइड एल्कोहल (Amide alcohol) के साथ उसका अर्क निकाल लेते हैं। तनु हाइड्रोक्लोरिक एसिड के साथ भली-भाँति हिलाकर पानी, सोडा, तथा अमोनिया मिलाने से वानस्पतिक पदार्थ नीचे बैठ जाते हैं। उन्हें फिल्टर से छानकर अलग कर लेते हैं। उस अवक्षेप (alkaloid) को पुनः अम्ल में घोलते हैं। उस घोल की कुछ मात्रा में सोडा डालकर उस समय तक गरम करते हैं जब तक वह उबलने न लगे। तत्पश्चात् उसे ठण्डा कर लेते हैं। इस प्रकार शुद्ध कुनेन की मात्रा घोल से पृथक् हो जाती है। कुनेन पानी में लगभग अघुलनशील है। अतः बहुधा इसका उपयोग घुलनशील सल्फेट के रूप में करते हैं।

कुनेन अपने बहुमूल्य गुणों के कारण अजेय है। मलेरिया के कीटाणुओं के लिए तो यह यमदूत ही है। उन पर यह उस अवस्था में धावा बोल देता है जब वे रक्त में स्वतन्त्र विचरते रहते हैं। मलेरिया के उपचार में अनुमानतः प्रतिदिन ५-७ ग्रेन कुनेन लेना आवश्यक होता है। अधिक मात्रा में ले लेने पर यह हानि पहुँचाता है। उस अवस्था में दृष्टि-दोष, बहरापन तथा कानों में सनसनाहट की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी हालत को 'सिन्कोनिज्म' कहते हैं।

कुनेन की रासायनिक संरचना

कुनेन ($C_{20}H_{24}O_2N_2$) वानस्पतिक पदार्थ होने के कारण अम्ल के साथ लवण के रूप में ही प्रयोग किया जाता है। इसमें नाइट्रोजन के दो परमाणु हैं जो एक अम्लीय-क्षार के रूप में कार्य करते हैं। फलतः $(C_{20}H_{24}O_2N_2)2H_2SO_47H_2O$ सल्फेट बनता है। यही कुनेन है। यह पानी में बहुत कम घुलनशील है, एल्कोहल में कुछ अधिक तथा एल्कोहल और क्लोरोफार्म के मिश्रण में सबसे अधिक। इसके दो अन्य सल्फेट $C_{20}H_{24}O_2N_2H_2SO_47H_2O$ तथा $C_{20}H_{24}O_2N_27H_2SO_47H_2O$ हैं जो अधिक घुलनशील हैं। उनका भी प्रयोग किया जाता है।

भूसा भी भवन निर्माण में

यूक्रेन की निर्माण और भवन-निर्माण अकादमी ने आर्ग्लिबिट तथा अर्बालिट नामक ऐसे दो पदार्थों का निर्माण किया है जो भूसे की कतरन तथा अन्य कूड़ा-करकट आदि से बनाये जा सकते हैं और भवन-निर्माण में गारे की जगह बखूबी काम आ सकते हैं। यह पदार्थ सड़ता नहीं, आग से अप्रभावित है तथा वजन में हलका भी रहता है। इससे बनायी हुई वस्तु को आसानी से चीरा, फाड़ा तथा जोड़ा जा सकता है।

तम्बाकू की नासूर को तलाक

स्मोकर्स को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि तम्बाकू ने अब नासूर को तलाक देने का फैसला कर लिया है। अब बीड़ी-सिगरेट पीनेवालों को नासूर का खतरा न रहेगा। पश्चिम जर्मनी के डा. वेंिडग ने 'वे-३६' नामक रसायन के प्रयोग द्वारा तम्बाकू से नासूरकर्त्ता तत्त्व, 'वेन्जेप्रेन' खींच लेने की विधि निर्धारित की है। इस क्रान्तिकारी आविष्कार ने उन्हें विश्व के करोड़ों धूम्रपायी व्यक्तियों का आशीर्वाद तथा धन्यवाद प्राप्त कराया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमा पर मानव के चरण

भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

रूस के मेजर निकोलोयेव तथा कर्नल पोपोविच के अन्तरिक्ष-अभियान की रोमांचकारी सफलता ने रूसी वैज्ञानिकों के अन्तरिक्ष-यान नियंत्रण की व्यवस्था और उसकी श्रेष्ठता को निर्विवाद रूप से स्थापित कर दिया है। रूसी अन्तरिक्ष-इंजीनियरों की कार्य-कुशलता का अनुमान आप अकेले इस बात से लगा सकते हैं कि वोस्तोक–३ तथा वोस्तोक–४ लगभग एक ही कक्षा में स्थापित किए गए थे और उनके कक्षातल में केवल एक डिग्री के ६०वें भाग का अन्तर था! दोनों यानों के बीच अधिकतम दूरी केवल १३ मील थी और दोनों के परिभ्रमण काल में अन्तर भी केवल बारह सैकण्ड था! स्पष्ट है कि दोनों यानों को अन्तरिक्ष में दागने की व्यवस्था तथा उनके नियंत्रण के आयोजन सर्वथा त्रुटिहीन थे, वर्ना यानों के दागने में एक सैकण्ड के शतांश की देर भी इस बात के लिए काफी थी कि उन दोनों के बीच सैकड़ों मील का फासला पड़ जाता। दरअसल वोस्तोक–४ को दागने का जो समय विशेषज्ञों ने निश्चित कर रखा था उसमें इंजीनियरों को कुछ त्रुटि नजर आयी और तुरन्त यह तय पाया कि नियत समय से १५ सैकण्ड पहले ही इस यान को दागा जाय। फलस्वरूप यह यान वोस्तोक–३ के उतने निकट अपने भ्रमणपथ से स्थापित हो सका वर्ना यह उससे सैकड़ों मील के फासले पर रह जाता।

इस सर्वथा नये ढंग के अभियान द्वारा रूसी इंजीनियरों ने यह सिद्ध कर दिखाया कि अन्तरिक्ष की एक ही कक्षा में दो या दो से अधिक यान एक दूसरे के अत्यन्त निकट स्थापित किए जा सकते हैं तथा उन यानों के यात्रियों के लिए यह भी सम्भव हो सकता है कि वे परस्पर बातचीत करके एक दूसरे को परामर्श तथा आदेश दे सकें और आवश्यकता पड़ने पर अपने यान का समुचित नियंत्रण करके यानों को परस्पर और भी सटा सकें। तब उन यानों के बीच,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

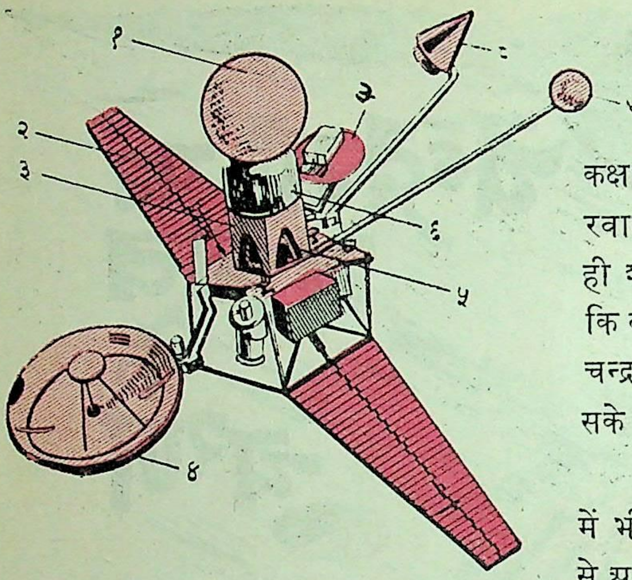

यह रेंजर-स्पेसक्राफ्ट चन्द्रमा तक जानेवाले कैप्सूल को अन्तरिक्ष में ले जाएगा। १. लैंडिंग स्फियर, २. सोलर पेनल, ३. कैप्सूल-वाहक प्लेटफार्म, ४. रेडियो कण्ट्रोल एरियल, ५. एयर कण्ट्रोल यूनिट, ६. लैंडिंग स्फियर का वापसी राकेट, ७. गामा किरणान्वेषक, ८. संवाद-प्रसार एरियल, ९. कैप्सूल छोड़ने का संकेत-यंत्र

यात्रियों तथा ईंधन आदि का आदान-प्रदान भी हो सकेगा। इस अभियान द्वारा यह बात भी एक तरह से पक्की हो गयी कि चन्द्रयात्रा को जानेवाले राकेटों के लिए यह जरूरी न होगा कि वे सीधे ही धरती से रवाना होकर चन्द्रमा तक चले जाएँ। ऐसा करने के लिये उन्हें ईंधन की बहुत अधिक मात्रा साथ में ले जानी होगी। इस दिक्कत से बचने के लिए ऐसा किया जा सकता है कि छोटे-छोटे कई राकेट, वोस्तोक–३ तथा वोस्तोक–४ की भांति, धरती के गिर्द एक ही कक्षा में स्थापित किए जाएँ और फिर उन्हें परस्पर जोड़कर एक अन्तरिक्ष-प्लेटफार्म बना लिया जाए। उसी प्लेटफार्म पर इंजीनियर धरती से भेजे गये पुर्जों को जोड़कर चन्द्र यात्रा पर जानेवाला राकेट तैयार कर लें और आगे के लिये उड़ान भरें।

उस ऊंचाई पर स्थित प्लेटफार्म स्वयं भी लगभग १८००० मील प्रति घण्टे की रफ्तार से घूम रहा होगा तथा पृथ्वी से काफी फासले पर उसकी कक्षा स्थित होगी। अतः उस प्लेटफार्म से रवाना होनेवाले राकेट के इंजन को थोड़ी ही शक्ति लगाने से इतना बल मिल जाएगा कि वह पृथ्वी के रहे-सहे आकर्षण से छूटकर चन्द्रमा की ओर आसानी से अग्रसर हो सके।

रूस के अन्तरिक्ष-इंजीनियर इस योजना में भी लगे हुए हैं कि अगली बार वोस्तोक से अधिक शक्ति वाले बड़े यान पृथ्वी के गिर्द एक ही कक्षा में स्थापित किये जाएं, ताकि प्रत्येक यान में कम से कम दो अन्तरिक्ष यात्री रह सकें। तदुपरान्त इंजीनियर अन्तरिक्ष-स्टेशन स्थापित करके वहाँ पर तैयार किए गए राकेट यान को चन्द्रमा पर भेजने का भी प्रयोग करेंगे। उस यान में मानव-यात्री के बैठने का भी प्रबन्ध रहेगा।

अन्तरिक्ष-कक्षा में एक यान को दूसरे यान के निकट स्थापित करना निस्सन्देह एक दुस्तर कार्य है। कल्पना कीजिए कि मील-आध-मील की ऊँचाई पर उड़ते हुए वायुयान पर पृथ्वी से एण्टी-एयरक्रैफ्ट-गन दागनी है। इसके लिये आवश्यक होगा कि ऊँचे आकाश में एक ही बिन्दु पर तथा एक ही क्षण पर वायुयान तथा गोला दोनों पहुँचे। इसके लिए तरह-तरह के यन्त्रों की सहायता लेनी पड़ेगी ताकि गोला सही दिशा में तथा बिल्कुल सही वेग से दागा जाए, अन्यथा हो सकता है कि गोला जिस क्षण वायुयान के मार्ग पर पहुँचे उस वक्त तक वायुयान आगे जा चुका हो या वहाँ पहुँचा ही न हो!

अन्तरिक्ष-यानों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में लाने का कार्य तो ऊपर दिए गए उदाहरण से भी अधिक मुश्किल है। द्वितीय राकेटयान जिस क्षण प्रथम यान के भ्रमण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथ पर पहुँचे, ठीक उसी वक्त प्रथम यान को भी वहीं पहुँच जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उस क्षण द्वितीय यान की रफ्तार तथा उसकी दिशा भी वही होनी चाहिए जो प्रथम यान की है। इसका अर्थ यह है कि मिलन के ठीक पूर्व, द्वितीय यान की दिशा तथा उसके वेग के नियंत्रण के लिए सर्वथा सही किस्म के एलेक्ट्रानिक यन्त्र काम में लाए जाएँ। स्मरण रहे कि जिस क्षण द्वितीय यान प्रथम यान के निकट पहुँचे उस समय दोनों यानों की रफ्तार में रंचमात्र भी अन्तर नहीं होना चाहिए और न उनकी दिशा में ही विभिन्नता होनी चाहिए, अन्यथा वे यान अपनी कक्षा से पथभ्रष्ट हो जाएँगे और सारी योजना असफल हो जाएगी। अन्तिम क्षणों में रफ्तार और दिशा के सूक्ष्म नियन्त्रण की व्यवस्था राकेट पर लगे नन्हे गैस-जेटों द्वारा सम्पन्न की जाती है।

चन्द्रयात्रा के सिलसिले में अमरीकन अन्तरिक्ष-विशेषज्ञों की योजनाओं का भी उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा। अमरीकी अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों की योजनानुसार चन्द्र-यात्रा एक ही स्टेज में पूरी की जाएगी। इसके लिए अत्यन्त शक्तिशाली राकेटयान की जरूरत पड़ेगी। इस योजना को कार्यरूप देने के निमित्त एक विशालकाय राकेटयान का

१, २, ३, ४. चन्द्रमा के निकट पहुँचने पर पृथ्वी से प्राप्त संकेतानुसार कैप्सूल को छोड़ने की तैयारी में राकेट, ५. चन्द्रमा से २५ मील ऊपर कैप्सूल से राकेट अलग हो रहा है, ६, ७, ८. तीव्रवेग से चक्कर काटते हुए कैप्सूल को दूसरे राकेट द्वारा संतुलित किया जा रहा है। ९. कैप्सूल चन्द्रमा से संदेश-प्रसारण के लिए तैयार है

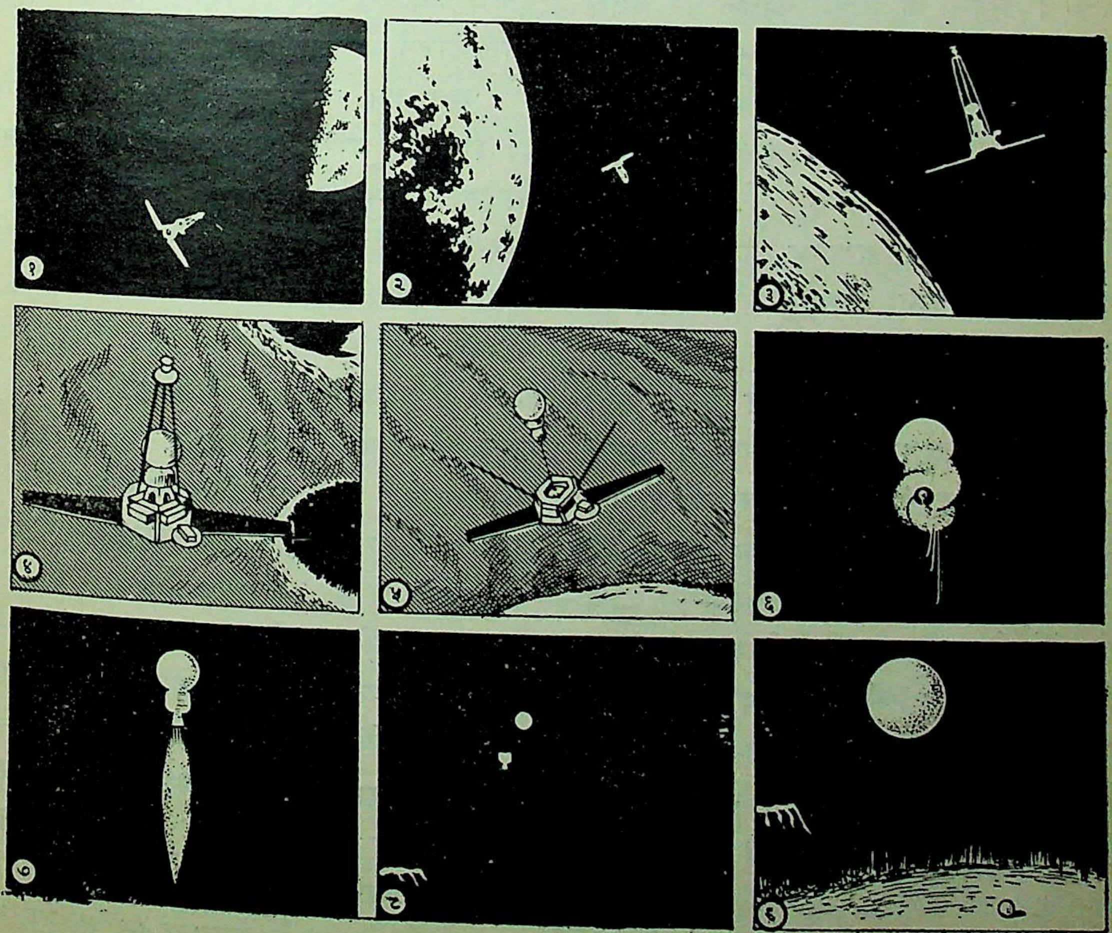

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्माण किया जा रहा है जिसे 'नोवा' नाम दिया गया है। यह एक छः खण्डी राकेट होगा और इसका वजन अनुमानतः १ करोड़ २० लाख पौण्ड होगा तथा पेंदे का व्यास ५० फुट। पूरे राकेट की ऊँचाई लगभग ४०० फुट होगी।

प्रथम खण्ड के दगने पर राकेट कुछ सौ मील की ऊँचाई तक आकाश में चढ़ जाएगा और तब मुख्य राकेट से अलग होकर नीचे गिर जाएगा। ठीक उसी वक्त द्वितीय खण्ड दगेगा जो राकेट को पृथ्वी के गिर्द परिभ्रमण-कक्षा में स्थापित कर देगा। तदुपरान्त ठीक दिशा और स्थिति में आते ही तृतीय खण्ड का राकेट दगेगा ताकि मुख्य राकेट कक्षा-पथ को छोड़कर चन्द्रमा की ओर चल निकले। अपने मार्ग पर अन्तरिक्षयात्रा में यह राकेट लगभग २½ दिन तक चलता रहेगा। चन्द्रमा के निकट पहुँचने पर चतुर्थ खण्ड दगेगा जो रफ्तार कम करके राकेट को चन्द्रमा के गिर्द परिक्रमा-पथ में स्थापित कर देगा और तत्काल ही चन्द्रमा पर यान को सकुशल उतार लेगा।

वापसी यात्रा आरम्भ करने के लिए पाँचवां खण्ड दागा जाएगा जो राकेट को ऊपर उठाकर पृथ्वी की दिशा में उसे वेग प्रदान करेगा और स्वयं अलग होकर वहीं चन्द्रमा की सतह पर गिर जाएगा। छठवें खण्ड के राकेट के अग्रभाग पर लगे कैप्सूल में ही तीन अन्तरिक्ष-यात्रियों के आवास की समुचित व्यवस्था रहेगी। उनके लिए कोच लगे होंगे जिन पर आधी लेटी अवस्था में वे आराम कर सकेंगे। लेटी अवस्था में रहने से लाभ यह होगा कि अतिरिक्त-गुरुत्वाकर्षण को वे सहज ही संभाल सकेंगे तथा भारहीनता की दशा का भी सामना कर सकेंगे।

छठवें खण्ड में लगे नन्हे जेट आदि की मदद से इसकी रफ्तार कम की जा सकेगी ताकि पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करने पर घर्षण की वजह से कैप्सूल के जल जाने का खतरा उत्पन्न न हो जाय। धरती के निकट पहुँचने पर स्वचालित यन्त्रों की मदद से कैप्सूल मुख्य राकेट से अलग हो जाएगा और पैराशूट की सहायता से सकुशल धरती पर उतर आएगा।

इस सीधी यात्रा की अमरीकन योजना में खूबी यह है कि पृथ्वी के गिर्द, कक्षा-पथ में दो या दो से अधिक यानों के सम्मिलन की व्यवस्था नहीं करनी पड़ेगी। इस योजना को कार्यान्वित करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि सीधी उड़ान के योग्य शक्ति प्राप्त करने के लिए 'नोवा' राकेट बहुत विशाल आकार का बनाना पड़ेगा तथा उसके प्रथम खण्डी राकेट को दागने पर विस्फोट का इतना जबर्दस्त धक्का लगेगा कि आसपास की इमारतें धराशायी हो सकती हैं।

अतः इन कठिनाइयों से बचने के लिए दो योजनाएं और भी विचाराधीन हैं। एक योजना के अनुसार अपेक्षाकृत छोटे 'सैटर्न–५' किस्म के कई राकेट पृथ्वी के गिर्द एक ही कक्षा में स्थापित किए जाएंगे ताकि उनका सम्मिलन हो सके। उन पर लगे कैप्सूलों के अन्दर बैठे इंजीनियर अपने यन्त्रों को चालू करके दोनों यानों को जोड़कर एक शक्तिशाली राकेट बना लेंगे और फिर 'नोवा' की भाँति चन्द्रमा की ओर वह सम्मिलित राकेट चल पड़ेगा।

दूसरी योजना के अनुसार पृथ्वी से भेजे गए कई राकेट पहले चन्द्र के गिर्द एक कक्षा में स्थापित किए जाएँगे, फिर वहीं उनका सम्मिलन कराया जाएगा। बाद में वे चन्द्रमा की सतह पर उतारे जाएँगे। वापसी यात्रा 'नोवा' की भाँति पूरी की जाएगी।

दूसरी योजना के अनुसार 'नोवा' किस्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

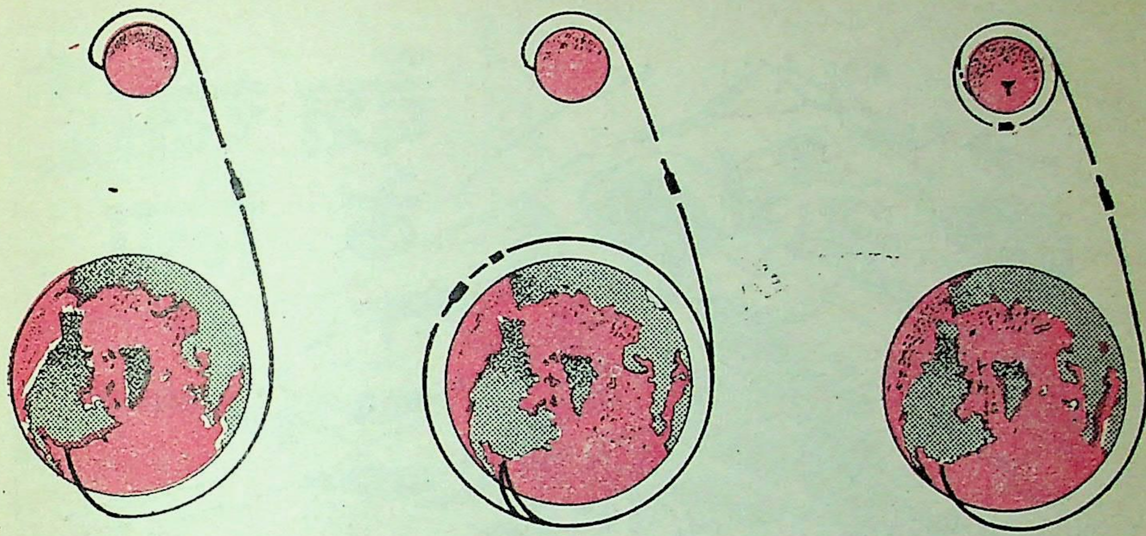

के राकेटयान का वजन 'नोवा' से कम होगा क्योंकि उसमें चन्द्रमा पर से उड़ान के लिए आवश्यक ईंधन नहीं लादना पड़ेगा। प्रस्तावित स्कीम इस प्रकार है—चन्द्रमा के निकट पहुँचकर वह यान उलटे मुँह से हलके राकेट दागकर अपनी रफ्तार उचित मात्रा में घटा लेगा और चन्द्रमा के गिर्द परिक्रमा करने लगेगा। स्पष्ट है कि उस दशा में उसके इंजन चालू नहीं रहेंगे। तत्पश्चात् अग्रभाग में रखे 'टैक्सी राकेट' को दागा जाएगा जो चन्द्रमा पर पहुँचेगा। 'टैक्सी-राकेट' पर लगे कैप्सूल में दो यात्री होंगे और तीसरा यात्री मुख्य यान में ही रह जाएगा। तीन चार दिनों तक निरीक्षण करने के बाद टैक्सी-राकेट पुनः दगेगा और लौटकर उसी कक्षा में पहुँच जाएगा जिसमें मुख्य यान बन्द इंजन की दशा में चन्द्रमा का चक्कर लगा रहा होगा। सम्मिलन के बाद ही मुख्य यान अपने इंजन को चालू करके उस कक्षा से बाहर निकलकर धरती की ओर चल पड़ेगा। अवश्य, इन योजनाओं को कार्यान्वित करने में कुछ वर्षों की देर है, किन्तु ऐसी आशा है कि ८-१० वर्षों के अन्दर ही मनुष्य चन्द्रमा की वापसी-यात्रा पूरी कर लेगा।

मक्खियों के लिए परिवार-नियोजन

'अफोलेट' ऐसा ही एक रासायनिक पदार्थ तैयार किया गया है जो मक्खियों की वंशवृद्धि पर पूर्ण विराम लगा सकता है। खाना तो दूर, इसे स्पर्श कर लेने पर भी मक्खियां स्वयं तो मरेंगी नहीं, प्रजनन के लिए बेकार हो जाएँगी। उनके अण्डों से बच्चे पैदा ही नहीं होंगे! मक्खियों की बाढ़ से इस प्रकार छुटकारा दिलाने का श्रेय अमरीकी संयुक्त राज्य के कृषि-विभाग को है। इस विभाग ने लम्बे समय तक अथक परिश्रम और अनेक प्रयोगों के अनन्तर यह नया पदार्थ प्रस्तुत किया है।

अकल्पनीय ऊँची छलांग

रायल एयर फोर्स का एक तोपची जलते हुए यान से कूदते समय बहुत कोशिश करने पर भी जब अपना पैराशूट न खोल सका तब इस खूबी और सावधानी से नीचे उतरता चला आया कि १८००० फुट की ऊँचाई से १२० मील प्र. घ. के वेग से नीचे आते हुए भी सकुशल आ गिरा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश रक्षा के लिए आपकी बचत की जरूरत है

इन नयी मदों में रुपया लगाइये :

१० वर्षीय रक्षा जमा पत्र

४½% प्रतिशत कर-मुक्त ब्याज प्रति वर्ष दिया जाता है।

ये जमा पत्र ५० रु० या इसके गुणकों में मिलते हैं।

ये भारतीय रिजर्व बैंक के सभी कार्यालयों, भारतीय स्टेट बैंक तथा इसके सहायक बैंकों की शाखाओं और ट्रेजरियों व सब-ट्रेजरियों से मिल सकते हैं।

१२ वर्षीय राष्ट्रीय रक्षा पत्र

६¾ प्रतिशत प्रति वर्ष साधारण ब्याज या ४¾ प्रतिशत प्रति वर्ष चक्रवृद्धि ब्याज मिलता है।

ये ५ रु०, १० रु०, ५० रु०, १०० रु०, ५०० रु०, १,००० रु०, ५,००० रु० और २५,००० रुपयों के मिलते हैं। इनमें लगाई रकम १२ वर्ष पूरे होने पर ७५ प्रतिशत लाभ सहित वापस मिल जाएगी।

ये बचत बैंक का काम करने वाले सभी डाकघरों से मिल सकते हैं।

अधिकतम सीमाएं - एक व्यक्ति के लिए ३५,००० रु०
और संयुक्त रूप से ७०,००० रु०

भारत की रक्षा शक्ति को और सुदृढ़ कीजिए

राष्ट्रीय बचत संगठन

DA-62/600

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो,

विज्ञान-लोक इस अंक से अपना तीसरा वर्ष पूरा कर रहा है। यह जनवरी-अंक नये वर्ष की शुभकामनाओं सहित तुम्हारे हाथ में रख रही हूँ।

ये ही दिन, ये ही महीने तुम्हारे मेहनत करने के हैं—वर्ष भर का सारा ज़ोर लगा देने के हैं। तभी तो अपनी कक्षा से नयी कक्षा तक विजयी छलांग लगा सकोगे! पिछले दो अंकों को तुम सबने बहुत पसन्द किया है इसकी चर्चा तुम्हारे पत्रों में भरी पड़ी है। विद्यार्थियों ने **विज्ञान-लोक** से अपने अध्ययन में लाभ ही लाभ उठाया है।

कुछ पाठकों को अक्टूबर-अंक में 'परमाणु-विस्फोटन', 'परम शून्य', तथा 'पशु-वाटिका के बीमार सदस्य' लेख विशेष उपयोगी प्रतीत हुए हैं तो अन्य पाठकों ने नवम्बर अंक के 'मकड़ी' और 'सब कुछ आटोमैटिक' लेखों को बहुत पसन्द किया है। 'फोटो-प्रिन्ट' (नवम्बर अंक में प्रकाशित) तुम्हारे ही पाठक-मित्र की रचना है और ऐसी ही रचना की काफी माँग भी है। तुम भी कुछ नया खोजकर ऐसी ही रोचक सामग्री भेज सकते हो।

विज्ञान-लोक से तुम और क्या चा[illegible] हो? कुछ रचनात्मक सुझाव हों [illegible] निस्संकोच लिखो। उस पर अवश्य विचार किया जायगा।

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ३४ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

भुवनेश्वर (६१४) आगरा, विजय (१००८) झाँसी, प्रभातसुमन (१२२७) जयपुर, गजेन्द्रपाल (१६०५) मेरठ, सुधीरकुमार (१६१६) आगरा, हरवंशलाल (२६६६) थानेसर, मदनलाल (२८३३) कुरुक्षेत्र, राजेन्द्रपाल (३०७३) लुधियाना, इन्द्रकृष्ण (५०६२) आगरा, जगदीशप्रसाद (६६१६) कानपुर, धर्मवीर (८२००) आगरा।

द्वितीय पुरस्कार

सुभाषचन्द्र (२८४) अलमोड़ा, मुरलीधर (३५४०) कानपुर, प्रकाशचन्द्र (३७२०) जबलपुर राजनलाल (५६४८) गढ़उमराव, अशोक (६१६२) रुड़की, रवीन्द्रकुमार (६३५६) लखनऊ, शान्तिलाल (६४७४) उदयपुर, अरुणा (६६३५) दिल्ली, नरेशकुमार (६६३६) आगरा, सुधीरकुमार (६६३७) जालंधर, अनिलकुमार (६७१५) आगरा, विमलचन्द्र (७१७२) पीसांगन, सज्जनसिंह (७६८१) उदयपुर, वल्लभदास (७७५८) उदयपुर, मोहिनी (७८२७) रांची, शोभाराम (८०४८) तुमसर, शशिकान्ता (८२३५) हिसार, देवीशरण (८८२१) बेगूसराय।

तृतीय पुरस्कार

अशोक (२७०१) लखनऊ, अमरेन्द्रनाथ (३३५३) पटना, अफसरहुसैन (३४३६) जबलपुर, रामकुमार (४७७४) राजगढ़, अरुण (५३६२) आगरा, प्रकाशविष्णु (६११३) अजमेर, सुरेन्द्रसिंह (६१८०) जबलपुर, प्रेमसिंह (६५४०) पूरनपुर, दिलीपकुमार (६७३२) बम्बई, सुरेशकुमार (७१६०) अमृतसर, मंजु (७२६०) लखनऊ, वीरेन्द्रप्रताप (७३०२) इलाहाबाद, रवीन्द[illegible] दिल्ली, सौभागचन्द [illegible]सादि (८४०२) [illegible] २३ राजपाल-[illegible]) शाजापुर, ३५ गोरख[illegible]मार (११) सिरोही, ३७ [illegible]कुमार (१३) हाथरस, ३६ ४० कृष्णकिशोर (१४) भिलाई।

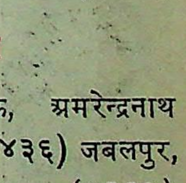

विनोदकुमार
(स. सं. ७४३२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब के नये सदस्य

रामचन्द्रराव
(स. सं. ५२४)

रवीन्द्रनाथ
(स. सं. २४२६)

विश्वनाथ
(स. सं. २७०५)

सुभाषचन्द्र
(स. सं. २७०६)

विकासकुमार
(स. सं. ३११६)

अवधेशकुमार
(स. सं. ३६००)

रमेशकुमार
(स. सं. ३६२७)

सुरेशचन्द्र
(स. सं. ३६५४)

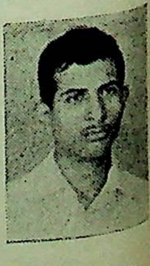
रामनारायण
(स. सं. ६६६१)

५३६४ धर्मपाल (१५) तिजारा, ६५ अरुणकुमार (१२) आगरा, ६६ पशुपतिराय (१५) टेंगडा, ६६ कु. प्रभा अग्रवाल (१४) उन्नाव, ६८ गुलाबचन्द (१३) लाडनूं, ६९ वसंतशंकर (१८) पूना, ७० भगवान शांताराम (२०) पूना, ७१ शान्तिलाल (१५) चिताड़, ७२ अजीतसिंह (१२) लाडनूं, ७३ गोपालप्रसाद (१७) पिपरिया, ७४ सुरेश कुमार (१३) पिपरिया, ७५ रमेश मिर्धा (१५) जोधपुर, ७६ कृष्ण कुमार (१५) गया, ७७ धर्मचन्द्र (१४) कुचमन, ७८ सुभाष चन्द्र (१५) जयपुर, ७९ सुभाषचन्द्र (१४) आलिराजपुर, ८० महेशचन्द्र (१७) रायपुर, ८१ कैलाशप्रसाद (१६) राँची, ८२ हरिश्चन्द्र (१५) बिलासपुर, ८३ कुस्या खाड़गड़े (१८) बैतूल, ८४ सीताराम (१४) लहरियासराय, ८५ भीमराज दुबे (१४) फतेहपुर, ८६ माणकलाल (१९) ब्यावर, ८७ कमलजीत (१५) अमृतसर, ८८ निर्मल कुमार (१७) कलकत्ता, ८९ कु. चित्राघोष (१६) कलकत्ता, ९० चम्पालाल (१४) वरकाना, ९१ नरेन्द्रसिंह (१३) छूटमलपुर, ९२ एकनारायण (१४) डिगबोई, ९३ इन्द्रराज (१६) रायगढ़, ९४ माधव प्रसाद (१८) रायगढ़, ९५ राहुल (८) लखनऊ, ९६ वीरभरतलाल (१३) पटना, ९७ नेत्रपाल (१४) देहरादून, ९८ प्रेमकिशोर (१४) लोहारदगा, ९९ कु. कुसुम खत्री (१६) फैजाबाद, ५४०० सुरेन्द्रकुमार (१५) बम्बई, १ सुरेशचन्द्र (१७) ब्यावर, २ अरविन्दकुमार (१५) झाँसी, ३ सुरेन्द्रप्रसाद (१४) कुमारधुबी, ४ कृष्णकुमार (१४) आगरा, ५ सतीशचन्द्र (१६) धौलपुर, ६ बालकृष्ण (१३) अलीगढ़, ७ श्रीकान्त (१५) इलाहाबाद, ८ अवतारसिंह (१३) गोलमुरी, ९ कु. शोभारानी (११) इलाहाबाद, १० रतनकुमारी (१०) इलाहाबाद, ११ कु. उर्मिला (१९) इलाहाबाद, १२ ओमकान्त (१०) इलाहाबाद, १३ लालताप्रसाद (१६) लखनऊ, १४ अरुणकुमार (१४) लखनऊ, १५ हरीशचन्द्र (१४) पिथौरागढ़, १६ जगदीशकुमार (१५) मुरैना, १७ अशोककुमार (१३) कानपुर, १८ अशोककुमार (१२) ब्यावर, १९ देवकीनन्दन (१६) अजमेर, २० महेशकुमार (१४) खोड़न, २१ मोहनलाल (१६) ब्यावर, २२ सत्यनारायण (१५) पटना, २३ विश्वमित्र (१५) बीकानेर, २४ विश्वनाथ (१३) काम्पटी, २५ बलदेवसिंह (१२) कुरुक्षेत्र, २६ काशीनाथ (११) फैजाबाद, २७ चन्द्रप्रकाश (११) झांसी, २८ विमलकुमार (१२) मीरगंज, २९ चेतनदास (१६) अजमेर, ३० भानुप्रकाश (१४) शाहाबाद, ३१ सरोजकुमार (१८) कुरुद, ३२ ज्ञानेश्वर तुलसीराम (१५) अकोला, ३३ त्रिवेदी सीमालाल (१४) भाभर, ३४ सुरेशकुमार (१३) भिवानी, ३५ दयानन्द (१२) जमशेदपुर, ३६ रवीन्द्र (१६) ...धियाना, ३७ जयप्रकाश (१३) हरिद्वार, ३८ अविनाश ...मदनगर, ३९ नवलकिशोर (१४) मुजफ्फरपुर, ...५) श्रीगंगानगर, ४१ रमेशचन्द्र (१६) कल... ...ल (१४) कलकत्ता, ४३ नारण भाई ...४ अमरनाथ (१५) कानपुर, ४५ अजयकुमार (१२) कलकत्ता, ... टाकविनोद (१६) भावनगर,

भारत की
राष्ट्रीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूपिन्द्रलाल
(स. सं. ४००२)

रजनीकान्त
(स. सं. ५२४१)

रामचन्द्र
(स. सं. ५४३६)

शैलेन्द्रकुमार
(स. सं. ५६१३)

विजयकुमार
(स. सं. ६७४०)

४९ ललितमोहन (१५) जयपुर, ५० प्रमोदबहादुर (१४) सरदारशहर, ५१ देवप्रकाश (२१) सीकर, ५२ ग्रोमप्रकाश (१४) नारायना, ५३ गोपालसिंह (१८) जयपुर, ५४ ग्ररुणकुमार (१६) ग्रागरा, ५५ सत्यनारायण (१२) कटरास बाजार, ५६ सुधाकर वासुदेवराव (१६) भरमानी, ५७ श्यामलाल (१४) जमशेदपुर, ५८ कु. जयश्री (१०) पिथौरागढ़, ५९ सत्यप्रकाश (१६) पृथ्वीपुर, ६० नरेन्द्रकुमार (१७) ग्रामला, ६१ देवेन्द्रकुमार (१३) ग्रासीन्द, ६२ जेठमल (१६) ग्रासीन्द, ६३ कु. स्वदेश (१५) भोपाल, ६४ माधव भट्टाचार्य (१८) बरेली, ६५ पुरुषोत्तमदास (१६) हरदा, ६६ देशराजवीर (१५) बरेली, ६७ घनश्यामदास (१४) ग्रासीन्द, ६८ किशनसिंह (१५) ग्रासीन्द, ६९ प्रमोदकुमार (१८) शमशाबाद, ७० प्रहलादराम (१२) गाटी भरकट्टा, ७१ साधुशरण (१६) कतरासगढ़, ७२ कु. श्यामा (१५) फैजाबाद, ७३ राधेश्याम (१३) मुरैना, ७४ चन्द्रप्रकाश (१४) इन्दौर, ७५ रायरामलाला. (११) धनबाद, ७६ दिगम्बर मल्लिक (१८) रतनपुर, ७७ नागेन्द्रनाथ (१३) गया, ७८ ग्रवधेशकुमार (१२) पटियाली, ७९ नरेशचन्द्र (१५) गोरखपुर, ८० वसन्तकुमार (१५) पेण्ड्रा रोड, ८१ कैलाशचन्द (१८) जबलपुर, ८२ प्रदीपकुमार (१४) ग्रहमदाबाद, ८३ परमानन्द (१५) कानपुर, ८४ फजलुर रहमान (१७) पचट्टी, ८५ दिग्विजयसिंह बुनियादगंज, ८६ घनश्याम (१६) इन्दौर, ८७ रमेशचन्द्र (१७) (१५) इन्दौर, ८८ प्रदीपकुमार (१५) इन्दौर, ८९ लक्ष्मण वन्सीमल (१७) ग्रजमेर, ९० श्यामराव (१६) रायपुर, ९१ रवीन्द्रकुमार (१६) सहारनपुर, ९२ ग्रशोक कुमार (१५) महू, ९३ पुष्पलता (१६) महू, ९४ ग्रनिलकुमार (१२) महू, ९५ कमलकुमार (१५) महू, ९६ ग्रशोककुमार (११) महू, ९७ जगजीतसिंह (१६) बैतूल, ९८ राजेन्द्रकुमार (१०) तेलाड़ी, ९९ श्यामानन्द (९) रेबड़ा, ५५०० रामजीभाई बालजीभाई (२६) मालपरा, १ सवाईसिंह (१५) नागदा, २ मानचन्द (१४) कुरुक्षेत्र, ३ जगदीशनारायण (१७) कानपुर, ४ रमेशचन्द (१९) बाढ़ौन, ५ प्रमोदकुमार (१६) शाहनगर, ६ सुरेन्द्रकुमार (१६) जबलपुर, ७ राकेशकुमार (१६) लुधियाना, ८ रामावतार (१३) चूरू, ९ ग्रजयकुमार (१६) रायपुर, १० विपेन्द्र (१६) जगदीशपुर, ११ ग्ररविन्द कुमार (१३) कोटा, १२ भगवतीनारायण (१७) नरायना, १३ सत्यनारायण (१९) नरायना, १४ चन्दाकुमारी (१३) चूरू, १५ योगेन्द्रपाल (१४) बड़ौत, १६ कलियुगीनारद (१५) गया, १७ वीरेन्द्रप्रताप (१४) सियानवाक, १८ रणजीतकुमार (१३) लाडनूं, १९ बाबूराम प्रजापति (१७) भोपाल, २० जगतकुमार (१४) लाडनूं, २१ सूरजमल (१६) ग्रजमेर, २२ ग्रोंकारनाथ (१३) वाराणसी, २३ ग्रमलेन्दुकुमार (१२) महेशपुर, २४ जगदीशप्रसाद (१४) जयपुर, २५ रविप्रकाश (१७) हलद्वानी, २६ रमेशचन्द्र (१४) श्योपुरकलां, २७ ग्रमृतलाल (१५) जमशेदपुर, २८ त्रिलोचनसिंह (१३) डोंगरगढ़, २९ मुरलीधर (१५) कोपा बाजार, ३० बृजनन्दन (१५) लोहारदगा, ३१ मौलिप्रसाद (१७) कछवा, ३२ नजर परवीन (१५) मौदहा, ३३ राजपालसिंह (१५) धौलाना, ३४ विजयप्रभात (१७) शाजापुर, ३५ नन्दकुमार (१६) कुरुद, ३६ राजेन्द्रकुमार (११) सिरोही, ३७ जेठमल (१६) मीनासर, ३८ राजकुमार (१३) हाथरस, ३९ कु. सरोजिनी (१४) राँची, ४० कृष्णकिशोर (१४) भिलाई।

उमेशचन्द्र
(स. सं. ६८३८)

हिमांशुकुमार
(स. सं. ७०८९)

कृष्णचन्द्र
(स. सं. ७२११)

विष्णुऔतार
(स. सं. ७२९५)

विनोदकुमार
(स. सं. ७४३२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सोना दो, लोहा लेंगे'

आज हमारे लिए लोहा सोने से भी कीमती है

इसलिए कि

भारतीय जवान सरहद पर लोहा ले रहे हैं
उन्हें लोहे की कमी न पड़ने पाए

नहीं तो

मुल्क का सारा सोना खतरे में पड़ जाएगा
बाहर से लोहा मँगाने के लिए सोना चाहिए

आइए

गहने देकर हथियार जुटाएँ
रक्षा कोष को और बढ़ाएँ

[सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

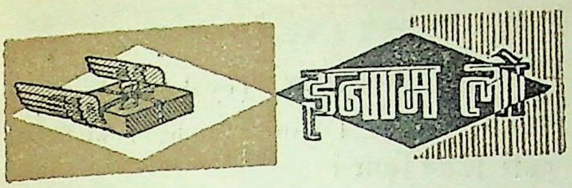

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३६

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३१ जनवरी

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५७ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर "विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३६ का उत्तर" लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ जनवरी तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३६ के प्रश्न

१. पानी का जहाज बनाते समय लोहे की चद्दरों में लाल-सुर्ख तप्तावस्था में ही रिविटें बिठाने का क्या आशय है? स्पष्ट कीजिए।

२. Bauxite शब्द का अर्थ तथा उत्पत्ति-स्रोत क्या है?

३. ऐसा कौन सा पक्षी है जिसके पंख नहीं, पूँछ भी नहीं और कहाँ पाया जाता है?

४. दिक्सूचक (magnetic compass) की सुई पृथ्वी के उत्तर को ही इंगित करती है। यह सत्य है तो इसका कारण बताइए।

५. अन्तरिक्ष में घूमती हुई हमारी पृथ्वी की गति कितने प्रकार की है? उन प्रकारों को गिनाइए।

६. एक प्राणी ऐसा भी है जो अण्डे तो देता है किन्तु स्तनपायी है। वह कौन है और कहाँ पाया जाता है?

७. Ermine क्या है, इसका प्राप्ति-स्रोत क्या है?

८. Tramway शब्द का सर्वप्रथम उपयोग किस अर्थ में किया गया?

९. सूर्य से भी अधिक ताप, अर्थात् ५० लाख डिग्री सें. विज्ञानशाला में प्राप्त किया जा सका है। उक्त विज्ञानशाला का पूरा नाम क्या है और वह कहाँ है?

१०. अन्तरिक्ष के अनुसन्धानक वायुमण्डल की आर्द्रता नापने के लिए किस विशेष मापकयन्त्र का उपयोग करते हैं?

प्रतियोगिता संख्या ३४ के प्रश्नों के उत्तर

१. मशीन तथा प्राणियों में नियन्त्रण और संदेशवाहन प्रणाली के विज्ञान को साइबरनेटिक्स नाम दिया गया है। एलेक्ट्रानिक मस्तिष्क आदि इसी विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं।

२. व्हेल।

३. साइबेरिया में आर्कटिक समुद्र तट पर।

४. लगभग ४० मील प्रति घण्टा।

५. एडीसन ने।

६. चीन में मछुए कारमोराण्ट नाम की चिड़िया इस काम के लिए इस्तेमाल करते हैं।

७. भूसा डालने पर सांचे के अन्दर की ईंट सूखने के बाद सिकुड़ती नहीं थी; वर्ना खाली मिट्टी से जो ईंट बनायी जाती थी वह सिकुड़कर टूट जाती थी।

८. एस्बेस्टस।

९. अंगूठे का निशान हमेशा एक सा बना रहता है।

१०. एक प्रकार के कीड़े के शरीर से लाख प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

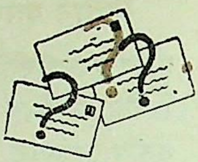

मदनलाल कपूर (२८३३) कुरुक्षेत्र

प्रश्न—पोलियोमाइलेटिस (Poliomyelitis) रोग के लिए वैक्सीन सर्वप्रथम किसने बनायी ?

उत्तर—अमरीकन डा. जोसेफ साक (Dr. Joseph Sak) ने १९५४ में। उसी के नाम पर उस वैक्सीन का नाम साक-वेक्सीन (Sak-vaccine) पड़ा।

कु. सुरेन्द्र कौर (१४८७) कदमा

प्रश्न—बिजली प्रवाहित करने पर बल्ब से तो प्रकाश निकलता है, लेकिन हीटर से ताप, ऐसा क्यों ?

उत्तर—दोनों में भिन्न-भिन्न प्रतिरोधन (resistance) के तार लगाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, बल्ब में टंगस्टन (tungsten) तार रहता है जो तप्त होने पर तीव्र प्रकाश देता है।

आलोककुमार साहा (११५६) गिरिडीह

प्रश्न—शरीर की त्वचा पर जलने से फफोला क्यों पड़ जाता है ?

उत्तर—वहाँ के जल-भाग का वाष्पीकरण हो जाता है; साथ ही कुछ अतिरिक्त जल-बिन्दु भी एकत्र हो जाते हैं। तभी तो फफोला फोड़ने पर पानी सा वह निकलता है !

नरेन्द्रकुमार सर्राफ (६३३०) वर्धा

प्रश्न—बिजली का धक्का लगने पर मनुष्य का एकबारगी बोल क्यों बन्द हो जाता है ?

उत्तर—धक्के के कारण समूचा मेरुदण्ड (spinal cord) सुन्न पड़ जाता है और शरीर के अंग-प्रत्यंग को पलक मारते ही प्रभावित कर देता है। अतः केवल वाणी ही क्यों, सारे अंग एक प्रकार से निर्जीव और शून्यवत् हो जाते हैं।

द्वारकाप्रसाद नामदेव (३७५०) इन्दौर

प्रश्न—रेलगाड़ी किसी नदी के पुल को पार करती है तो उसकी आवाज भारी क्यों हो जाती है?

उत्तर—पुल और नदी की सतह के बीच के वायुभाग में प्रतिध्वनि का विस्तार असाधारण रूप से बढ़ जाता है।

अरुण श्रीवास्तव (६९०३) लखनऊ

प्रश्न—साइक्लोट्रोन (cyclotron) अर्थात् परमाणु-विभंजक (Atom-smasher) का आविष्कार किसने किया ?

उत्तर—ओ. ई. लारेन्स (O. E. Lawrence) तथा लिविंग्स्टन (Livingston) ने सम्मिलित उद्योग से, १९३१ में।

राधेलाल गुप्ता (६४३७) बुलन्दशहर

प्रश्न—कौन से सेटेलाइट (satellite) ने सर्वप्रथम चन्द्रमा के पृष्ठ भाग के चित्र लिए और कब ?

उत्तर—सोवियत स्पेस-राकेट-३ (Space Rocket-3) ने ७ अक्टूबर, १९५९ को।

प्रकाशनारायण माथुर (८९४५)

प्रश्न—पाश्च्युराइजेशन (pasteurisation) किसे कहते हैं ?

उत्तर—वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा दूध को बैक्टीरिया तथा अन्य हानिकारक तत्त्वों से मुक्त करने की विधि।

सतीशकुमार (४०२९) गोरखपुर

प्रश्न—ईथर क्या चीज है ? क्या यह वायुमण्डल में पाया जाता है ?

उत्तर—पृथ्वी के गिर्द वायुमण्डल का जो आवरण है, उसमें ईथर का महत्त्वपूर्ण भाग है। अनेकानेक प्रयोगों तथा अनुसन्धानों के पश्चात् सर ओलिवर लाज (Sir Oliver Lodge) ने निश्चित रूप से घोषित किया कि ईथर से वायुमण्डल का कोना-कोना व्याप्त है। यह अत्यधिक शीतल है, पारदर्शक है तथा एक्स-किरणों और रेडियो तरंगों का उत्तम चालक है। प्रोटान तथा एलेक्ट्रान से निर्मित इस ईथर में चुम्बकीय तथा विद्युतीय प्रभाव के कारण स्वयं की शक्ति भी है। भूमण्डल पर होने वाली समस्त भौतिक तथा रासायनिक प्रक्रियाओं का यह अप्रत्यक्ष सहायक भी है।

शशिकान्त श्रीवास्तव (५९५८) आगरा

प्रश्न—पत्तियों पर ग्रीज लगा देने से वे पीली क्यों पड़ जाती हैं ?

उत्तर—उनकी श्वसन-क्रिया छिद्रों के बन्द हो जाने से रुक जाती है न ! कुछ देर बाद तो वे मुर्झा कर झड़ भी जायेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामनन्दन मिश्र (६६७६) भागलपुर

प्रश्न—यदि चन्द्रमा के आकर्षण द्वारा भूमण्डल के सागर में ज्वार आता है तो पृथ्वी पर जल से भी काफी हलकी वस्तुएं हैं, उन्हें चन्द्रमा क्यों नहीं खींच लेता ?

उत्तर—किसने कहा कि चन्द्रमा सागर-जल को खींचता है ? सत्य यह है कि चन्द्रमा तो पृथ्वी को अपनी ओर आकर्षित करता है। फलस्वरूप जितना पृथ्वी हटती है, उतना भाग जल से आप्लावित हो जाता है और ज्वार आया प्रतीत होता है।

अवधेशप्रसाद (२५७२) ढाका

प्रश्न—क्या शीशे को कपड़े में बदला जा सकता है ? यदि हाँ, तो सर्वप्रथम इसका प्रयोग किसने किया और कब ?

उत्तर—आजकल तो शीशे के वस्त्र (glass fabrics) बनाना एक आधुनिकतम वैज्ञानिक उद्योग है। इधर ही के वर्षों में शीशे के रेशे (glass wool) से प्रारम्भ होकर १/५००० इंच जैसे बारीक धागे काते जाते हैं और उनसे विविध साज-सज्जा के वस्त्रादि बनते हैं। वैसे इसका प्रथम स्वप्न १७१३ में कार्लो रीवा (Carlo Riva) नामक एक इटालियन वैज्ञानिक सार्थक कर चुका था जब कि प्रथम बार उसने शीशे से रेशे-धागे निकालने का सफल प्रयोग प्रदर्शित किया था।

सीताराम (४७३१) बीकानेर

प्रश्न—खुली हवा में रखा ठण्डा पानी धीरे-धीरे गर्म तथा गर्म पानी ठण्डा क्यों हो जाता है ?

उत्तर—अपने चारों ओर के ताप से समानता प्राप्त कर लेने का सहज स्वभाव कहाँ जायगा ? अतः अन्त में चारों ओर के वातावरण की अपेक्षा न तो अधिक ठण्डा, न अधिक गर्म रहेगा।

ज्ञानेश्वर (४१३०) इन्दौर

प्रश्न—निकोटीनिक अम्ल (Nicotinic acid) का पीना मनुष्य के लिए लाभप्रद है अथवा हानिकारक ?

उत्तर—निकोटीन तो तम्बाकू की पत्ती में निहित एक विष ही है; अतः इसके उपयोग से हानि के अतिरिक्त अन्य कुछ भी आशा न रखनी चाहिए।

शामबिहारी (१०१८) अमृतसर

प्रश्न—हाइड्रोपोनिक से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—बगैर खाद-मिट्टी के, बागबानी की कला का नाम है। इसके द्वारा रासायनिक विधि से पौधे उगाये जा सकते हैं।

परमेश्वरशरण श्रीवास्तव (५७१६) गया

प्रश्न—रात में खिलनेवाले पुष्प प्रायः सफेद क्यों होते हैं ?

उत्तर—परागण-क्रिया में सहायक, अपने मित्र-कीटों को आमन्त्रित करने के लिए।

कुमारी उमा (१९६९) सरगुजा

प्रश्न—हम श्वास के साथ कार्बन डाइआक्साइड बाहर फेंकते हैं किन्तु एक बड़ा आग का ढेर तो हमारे फूँकने से बुझता नहीं, उलटे बढ़ता ही है। ऐसा क्यों ?

उत्तर—श्वास के साथ निकली हुई कार्बन डाइ-आक्साइड गैस इतनी पर्याप्त नहीं होती कि आग को बुझा दे। यहाँ तक कि मोमबत्ती की लौ तक उस गैस से नहीं किन्तु वायु के झपाटे के कारण बुझती है। आग के ढेर को तो फूँक द्वारा हम अधिक वायु अर्थात् अधिक आक्सीजन ही पहुँचाते हैं, तब बुझने का प्रश्न ही कहाँ ?

हरजीतसिंह (४९१४) जमशेदपुर

प्रश्न—यदि आपरेशन द्वारा किसी बुद्धिमान व्यक्ति का मस्तिष्क एक मूर्ख के सिर में बिठा दिया जाए तो क्या वह भी बुद्धिमान हो जायेगा ?

उत्तर—प्रश्न दिलचस्प है और प्रयोग अभी नये ही हैं। बुद्धिमान व्यक्ति का ज्ञान-भण्डार तो नहीं ज्ञान-ग्राहक मस्तिष्क उस मूर्ख को अवश्य मिल जाएगा। तत्पश्चात् उचित शिक्षण द्वारा ही क्रमशः उसकी ज्ञान-धारिता में विकास अवश्य हो सकेगा।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्वालामुखी के मुख में

मुकुटदेश अग्रवाल (स. सं. ७९६२)

ज्वालामुखी, आग उगलनेवाला पर्वत, पत्थर के पिघले शीरे का अक्षय भण्डार, कभी भी किसी भू-प्रदेश को सदा के लिए सुला सकता है। कितनों को सुला भी चुका है, इसका इतिहास साक्षी है। ऐसे प्रलयकारी ज्वालामुखी से खेल करने की कौन सोच सकता है? खेल करना तो अलग, पास जाना भी खतरे से खाली नहीं। किसी भी क्षण फटकर वह महाविनाश ला सकता है। शेर और मगर के मुख में जाना तो सहज है, पर ज्वालामुखी के मुख में उतरना असम्भव ही है। समय-समय पर ज्वालामुखी के भयंकर रूप को देखकर अनेक जिज्ञासुओं के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि इसके भीतर का हाल देखा जाए। परन्तु क्या हाल जानना सम्भव था? सम्भव तो दूर, उसकी कल्पना करना भी महामूर्खता कही जा सकती थी।

> क्लाडियस पल्शर के सैनिक बागी सरदार स्पार्टकस और उसके ७० साथियों का पीछा कर रहे थे। स्पार्टकस अपने साथियों सहित पेड़ों की लम्बी, लटकती डालों और बेलों की रस्सेनुमा शाखों पर झूलते हुए एक पहाड़ी गह्वर में उतर गया। पहाड़ी के गिर्द, नीचे से ऊपर चोटी तक हरे-भरे खेत लहलहा रहे थे। पीछा करनेवालों के लौट जाने पर, तुरंत ही इन्हें भी वह स्थान छोड़कर भागना पड़ा, क्योंकि कुछ जानकार साथियों से उन्हें ज्ञात हो गया कि वह गिरि-गह्वर प्रसिद्ध ज्वालामुखी विस्यूवियस का था जिसने सन् ७९ की २४ अगस्त को मुंह खोला था तो पाम्पिआई तथा हरकुलेनियम नगरों को उदरस्थ करके ही दम लिया था!

इतने पर भी विज्ञान के लिए तो वह कल्पना भी महामूर्खता न रहकर खोज का विषय बन गयी। वैज्ञानिकों ने एस्बेस्टस नामक पदार्थ भी खोज निकाला जिस पर अग्नि का बिलकुल प्रभाव नहीं पड़ता। फिर भी यह तो आसान था ही नहीं कि उसे पहन-ओढ़कर ज्वालामुखी के अन्दर उतरा जाये। किसी भी क्षण पर्वत फट पड़े तो शरीर का रोयां भी नजर न आये।

किरनर महोदय ऐसे ही नर-वीर थे जिन्होंने प्राणों को हथेली पर रखकर इस असम्भव कार्य को भी सम्भव कर दिखाया। उन्होंने एस्बेस्टस के रस्से बनाये, एस्बेस्टस से सारे शरीर को ढँका, फोटो लेने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैमरे और लैंस को भी एस्बेस्टस से सुरक्षित कर लिया। उन्होंने अपने साथ आक्सीजन के सिलेण्डर भी रख लिए, क्योंकि ज्वालामुखी के भीतर सांस लेने के लिए वायु कहाँ ?

पूरी तैयारी करके भूमध्य सागर स्थित सिसली टापू के उत्तर में स्ट्राम्बोलो ज्वालामुखी का पर्वत उन्होंने चुना। ज्वालामुखी के मुख पर गिर्री लगायी और उसकी सहायता से वे रस्से के सहारे अन्दर उतरे। वे पर्वत की गर्म लपटों में निर्भयतापूर्वक आठ सौ फुट तक उतरते चले गये। आठ सौ फुट ! भयंकर ज्वालामुखी के मुख में !!

इस तरह प्राणों को संकट में डालकर उन्होंने ज्वालामुखी के उन अद्भुत रहस्यों को देखा जिन्हें देखना पहले असम्भव माना जाता था। भीतर हजारों छेद थे जिनमें से गन्धक आदि की अग्निशिखाएँ लपलपा रही थीं और चारों ओर अनेक गहरे कुएं थे जिनमें से तेजी से लावा निकल रहा था मानो लावा का सागर ही बह रहा हो ! कुएं के भीतर रंग-बिरंगी तप्त गैसों का धुआँ छाया हुआ था। सारा वायुमण्डल गन्धक की जहरीली गैस से भरपूर था और सभी कुछ अत्यधिक गर्म था।

लगभग ३ घंटे ज्वालामुखी के मुख में बिताकर किरनर महोदय बाहर निकले और सारे संसार को आश्चर्य में डाल दिया। यों विज्ञान की करामात ने इस असम्भव काम को भी सम्भव बना डाला।

क्या पता, विज्ञान अपने करिश्मों से एक दिन ऐसा भी आविष्कार कर दिखाये जिससे कोई भी व्यक्ति बिना किसी खतरे के ज्वालामुखी के मुख में उतर सके ! ●

तं आराम और राहत के लिये

जोशीना

जोशीना प्रसिद्ध यूनानी नुस्खे 'जोशान्दा' का एक्सट्रेक्ट है। यह जुकाम के सभी लक्षणों को तुरन्त दूर करती है, बन्द नाक को खोलती है और आराम पहुँचाती है। जोशीना की एक शीशी सदा अपने पास रखिये।

हमदर्द देहली ● कानपुर ● पटना

GAY/HD/538

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राहक बनिए और पढ़िए

सोवियत भूमि

भारत-रूस मैत्री पर सचित्र पत्रिका अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, तामिल, तेलगू, मलयालम कन्नड़, बंगाली, आसामी, उड़िया, गुजराती, मराठी और नैपाली में प्रकाशित होती है।

दरों में विशेष रिआयत

(१-१२-१९६२ से ३१-१-१९६३ तक)

घटी दरें	अंग्रेजी	अन्य भाषाओं में
१ वर्ष	५)	४)
२ वर्ष	६)	७)
३ वर्ष	१२)	१०)
साधारण दरें :		
१ वर्ष	६)	५)

कलेण्डर का पुरस्कार

प्रत्येक ग्राहक को एक सुन्दर, बहुरंगा, सात-पेजी कलेण्डर पुरस्कारस्वरूप दिया जाएगा। कलेण्डर के प्रत्येक पेज पर एक आकर्षक चित्र होगा जिसमें सोवियत संघ की मनोरम दृश्यावलि तथा इसी संघ के राष्ट्रीय वेश में सुसज्जित व्यक्तियों की आकर्षक झांकी चित्रित होगी।

वार्षिक शुल्क सीधा हमें अथवा स्थानीय एजेण्ट द्वारा भेजें।

भारत-स्थित सोवियत संघ का सूचना विभाग

२५, बाराखम्भा रोड, नई दिल्ली–१

यहाँ से काटिए

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृष्णा दीदी,

मुझे विज्ञान क्लब का सदस्य बना लीजिए।

जन्म-दिन ________ आयु ________

नाम ________________

घर का पता ________________

पुस्तकालय गुरुकुल काँगड़ी पुस्तकालय गुरुकुल काँगड़ी

____

स्कूल का नाम ________________

शिक्षा ________ रुचि ________

यहाँ से काटिए

यहाँ से काटिए

जगदीश मेहरा द्वारा दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा में मुद्रित एवं श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा के लिए प्रकाशित
[मुखपृष्ठ बृजवासी फाइन आर्ट आफसेट वर्क्स, मथुरा में मुद्रित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक केवल २) में !

चतुर्थ वर्ष-प्रवेश के उपलक्ष्य में

विज्ञान-लोक

की

नवीन आकर्षक योजना

- इस योजना के अनुसार आप २०) भेजकर तीन वर्ष के लिए ग्राहक बन सकते हैं।
- विज्ञान-लोक का वार्षिक शुल्क ९) है किन्तु इस योजना से आप तृतीय वर्ष के १२ अंक केवल २) में प्राप्त कर सकते हैं।
- इस योजना के अन्तर्गत आपको विज्ञान-लोक फरवरी १९६३ से जनवरी १९६६ तक भेजा जायगा।
- शुल्क भेजने की अन्तिम तिथि : ३१ जनवरी, १९६३।

आज ही विक्रय व्यवस्थापक, विज्ञान-लोक, हास्पिटल रोड, आगरा को मनीआर्डर द्वारा २० रु. भेजकर इस योजना का लाभ उठाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price : 75 nP. January 1963 Regd. No. A

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

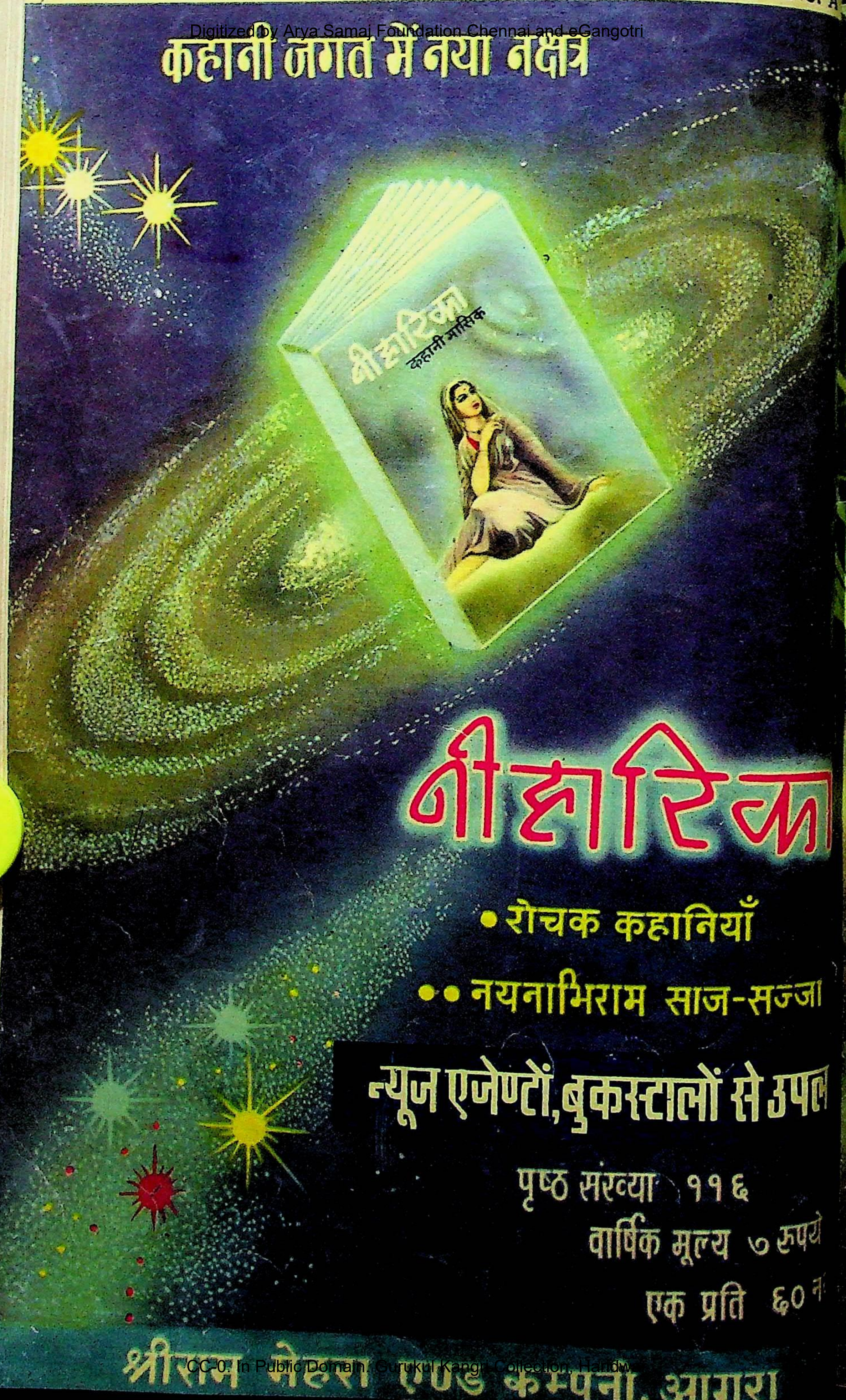

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar